राजकीय सेवाओं में आरक्षण, अनिवार्य और निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा एवं आधुनिक छात्रावास के जनक

राजर्षि शाहूजी महाराज

एक परिचय

आचार्य भिंदर चौधरी

एडवोकेट एनके वर्मा

राजकीय सेवाओं में आरक्षण, अनिवार्य और निःशुल्क
प्राथमिक शिक्षा एवं आधुनिक छात्रावास के जनक

राजर्षि शाहूजी महाराज

(एक परिचय)

आचार्य मिंदर चौधरी
एडवोकेट एनके वर्मा

अगोरा

आईएसबीएन : 9789392647048
© **आचार्य मिंदर चौधरी एवं एडवोकेट एनके वर्मा**
प्रथम संस्करण 2022

मूल्यः 125/-

प्रकाशक
माता सावित्री फाउंडेशन, 146 आवास-विकास कॉलोनी, गोंडा- 271002 (उत्तर प्रदेश)

प्रकाशन सहयोग
अगोरा प्रकाशन
ग्राम- अहिरान, पोस्ट- चमाँव, शिवपुर जिला- वाराणसी 221003 (उत्तर प्रदेश)
मो. : 09479060031

आवरण सज्जा : अमन विश्वकर्मा

Email : agoraprakashan001@gmail.com
Website : https://www.agoraprakashan.com

माता सावित्री फाउंडेशन, गोंडा के लिए अपर्णा द्वारा
कल्पना प्रेस, रामकटोरा, वाराणसी से मुद्रित और प्रकाशित।

Rajarshi Shahuji maharaj : Ek Parichay
Writen By Acharya Mindar Chaudhary, Adv. N.K. Verma

राजकीय सेवाओं में आरक्षण, अनिवार्य और निःशुल्क
प्राथमिक शिक्षा एवं आधुनिक छात्रावास के जनक

राजर्षि शाहूजी महाराज

(एक परिचय)

शाहूजी का जीवन परिचय

वर्तमान में भारत भूमि पर जहाँ कहीं भी आरक्षण का ज़िक्र आता है तो बड़े ही सम्मान के साथ महराजा शाहूजी महाराज को आरक्षण का जनक कहा जाता है। यद्यपि जातिगत आरक्षण का मूल मनु और उसकी *मनुस्मृति* है। मनु कोई व्यक्ति था या कोई प्रतीक अथवा काल्पनिक नाम, मैं इसकी गहराई में यहाँ नहीं जाना चाहता, किंतु वर्ण व्यवस्था जो आगे चलकर जाति विभाजन का विकृत रूप प्रस्तुत करती है, जिसके आधार पर शिक्षा, सम्पत्ति और सत्ता में वर्ण विशेष का, आरक्षण करने का सैद्धांतिक कार्य मनु या *मनुस्मृति* ने ही प्रारम्भ किया।

जहाँ तक छत्रपति शाहूजी महाराज द्वारा अपने राज्य कोल्हापुर में अछूतों, वंचितों, उपेक्षितों को शासन-प्रशासन कृषि, कारोबार, सुरक्षा व शिल्प में भागीदारी देने तथा श्रमजीवी वर्ण के लोगों के लिए शिक्षा स्वास्थ्य को जन सामान्य का अधिकार मानकर सबके सम्मान स्वाभिमान को ध्यान में रखकर विधान बनाने और उसे राज्य में व्यावहारिक स्वरूप देने की बात है वह एक तरह से सामाजिक व शैक्षिक रूप से पिछड़े या पिछाड़े गए वर्गों के प्रतिनिधित्व दिए जाने का पारदर्शी प्रमाण है। हमारे देश का महान संविधान भी वंचित वर्गों को प्रतिनिधित्व देने का ही कार्य करता है।

यद्यपि प्रतिनिधित्व, भागीदारी या आरक्षण के व्यावहारिक स्वरूप के अंतर खोजना कठिन है तथापि जिस प्रकार देश के कमेरे वर्गों को शूद्र कहकर उन्हें इतना हतोत्साहित किया गया कि शूद्र बताने में ही उनका मनोबल ध्वस्त हो जाया करता, ठीक उसी तरह से आरक्षण को समाज में इस तरह से प्रस्तुत किया गया जैसे वह कोई भीख हो, शोषक वर्गों का कमेरों के लिए कोई दया हो या उनका कोई उपकार हो। इसीलिए शाहूजी महाराज नें वंचितों-उपेक्षितों को राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में भागीदारी देने का काम किया और यही काम बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय संविधान में प्रतिनिधित्व देकर किया। इस प्रकार शाहूजी महाराज भागीदारी आंदोलन के जनक हैं।

कुछ अपवादों को छोड़कर वर्तमान में विश्व के लगभग सभी देशों में किसी

न किसी रूप में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली द्वारा ही सरकारें संचालित हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था से पूर्व प्रायः प्रत्येक देश में राजतंत्र ही या जहाँ कहीं पर गणतंत्रीय पद्धति थी, वहाँ भी अपने किसी ने किसी रूप में राजतंत्र विद्यमान था। इतिहास के पन्नों में राजतांत्रिक प्रणाली में भी विश्व भर में ऐसे कई शासकों का उल्लेख मिलता है जिन्होंने विश्वविजय की कामना में जहाँ साम्राज्य विस्तार के लिए अन्य मुल्कों पर आक्रमण किया वहीं इतिहास में ऐसे राजाओं का भी उल्लेख मिलेगा, जिन्होंने जनकल्याण के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया।

केवल भारत ही नहीं, अपितु विश्व इतिहास में लोकहितकारी शासक के रूप में सम्राट अशोक का नाम सर्वोपरि है जिसने युद्धघोष का सर्वथा परित्याग कर धम्मघोष को बढ़ावा दिया। अपनी युद्धप्रियता के कारण जो सम्राट अशोक 'चंडाशोक' के नाम से जाना जाता था वह अपने लोकहित के कारण 'देवानां पिय, पियदस्सी असोक' या 'धम्मप्रिय अशोक' हो गया। सम्राट अशोक एक विशाल साम्राज्य का शासक था, जबकि महाराष्ट्र की धरती पर स्थित एक छोटे से राज्य कोल्हापुर के छत्रपति शाहूजी महाराज ने अपने राज्य की जनता के कल्याण की भावना से जो कार्य किए और साथ ही वंचितों, उपेक्षितों, शोषितों, निराश्रितों, अछूतों, शापितों, ताड़ितों और नारियों के उत्थान के लिए जो चुनौतीपूर्ण सफल संघर्ष किया वैसा उदाहरण पूरे विश्व के इतिहास में किसी शासक का किसी कालखंड में नहीं मिलता।

छत्रपति शाहूजी ने जिस तरह के निर्णय बिना किसी दबाव के लिए और कार्य किए वैसा उदाहरण विश्व के किसी अन्य राजा का नहीं मिलता। उनके चिंतन और उपलब्धियों पर निरंतर लेखन और शोध करने की आवश्यकता है।

जिस समय बाबासाहब डॉ. अम्बेडकर का प्रवेश भारतीय राजनीति में नहीं हुआ था। उन्होंने सामाजिक परिवर्तन का भी सार्वजनिक जीवन प्रारम्भ नहीं किया था। तत्समय वे केवल महार समाज के एक होनहार युवक भर थे। तब उनके भविष्य के जीवन का पृष्ठ प्रकाशित या सम्भावित नहीं था किन्तु जब छत्रपति शाहूजी ने कोल्हापुर की नगर पालिका के अध्यक्ष जिसे स्वयं महाराजा ने निर्णय लेकर अस्पृश्य समाज का होने के बावजूद नगर पलिका अध्यक्ष बनाने का क्रांतिकारी निर्णय लिया था, से यह सुना कि एक महार युवक विदेश से पीएचडी करके आया है तो एक आम आदमी की तरह खोजते हुए महाराज डॉ. अम्बेडकर से मिलने बम्बई उनके निवास पर जा पहुँचे। इस घटना ने डॉ. अम्बेडकर को सबसे ज़्यादा प्रभावित किया और उनके मन में उठ रही सामाजिक परिवर्तन की भावना को पूरी तरह दृढ़ निश्चय करके व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया। डॉ.

अम्बेडकर के महान व्यक्तित्व के पीछे शाहूजी महाराज जैसा विशाल हृदय का राजा अपनी समस्त नैतिक राजनैतिक शक्ति के साथ पूरी ताकत से मौजूद था। संक्षेप में कहा जाए तो श्री भीमराव को डॉ. अम्बेडकर बनाने का श्रेय शाहूजी महाराज को ही प्राप्त है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक आचार्य मिंदर चौधरीजी अत्यंत कुशल चिंतक और बहुत अच्छे अध्येता हैं। उनकी यह कृति जनसाधारण के विचारों को उद्वेलित करने में बहुत सहयोगी सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। इसी विश्वास के साथ पुस्तक जिस उद्‌देश्य को लेकर लिखी गई है उसकी सफलता की कुशल कामना करता हूँ।

रामेश्वर पवन, बहराइच
9452777222

कोल्हापुर के राजा राजर्षि शाहूजी महाराज

पूज्य माता स्वर्गीय

शांती देवीजी

को

श्री शाहूजी महाराज का जीवन वृत्त

1874 से 1922

1.	26 जून, 1874	-	जन्म स्थल कोल्हापुर का लक्ष्मी विलास राजवाड़ा यानी आज का सर्किट हाउस
2.	17 मार्च, 1884	-	राज्यारोहण एवं दत्तक विधान
3.	1885 से 1889	-	राजकोट में शिक्षा पूरी की
4.	20 मार्च, 1886	-	पिताजी आबासाहब घाटगे का देहांत
5.	1889 से 1893	-	धारवाड़ में गुरु फ्रेजर के निर्देशन में अध्ययन
7.	नवम्बर 1891	-	दक्षिण भारत की यात्रा
8.	अक्टूबर 1892	-	दिल्ली, सिंध और पंजाब राज्य की यात्रा
9.	90 मार्च, 1894	-	राजकन्या अक्का साहिबा का जन्म
10.	2अप्रैल, 1894	-	कोल्हापुर संस्थान का शासन
11.	27 मार्च, 1895	-	फर्ग्युसन कॉलेज नई इमारत का उद्घाटन
12.	23 मई, 1895	-	दूसरी राजकन्या का जन्म और अल्पकाल में निधन
13.	1896	-	अभिनव छात्रावास की स्थापना
14.	जुलाई 1897	-	राजपुत्र राजाराम का जन्म
15.	1897	-	अकाल में गरीबों के सहायतार्थ निर्माण कार्य किसानों की सहायता और सस्ते अनाज की दुकानें संचालित करना
16.	15 अप्रैल, 1891	-	राजकुमार शिवाजी का जन्म
17.	1901 से 1911	-	छात्रावासों की स्थापना
18.	मई से अगस्त 1902	-	लंदन की यात्रा
19.	26 जुलाई, 1902	-	ओबीसी को नौकरी में 50 प्रतिशत आरक्षण
20.	फरवरी 1903 से सितम्बर 1905 तक	-	शंकराचार्य पद का प्रकरण

21.	19 फरवरी, 1904	-	अधिकारियों के दौरे/ भ्रमण में केवल राजकीय साधन का भी उपयोग करने का आदेश।
22.	अगस्त 1906	-	शाहू राजा के चरित्र को कलंकित करने का षड्यंत्र
23.	सितम्बर 1906	-	शाहू मिल कोल्हापुर की स्थापना
24.	1 मार्च, 1907	-	फर्ग्युसन कॉलेज को हिंदी संस्थान और अन्य लोगों की मदद करने के लिए परिपत्रक जारी
25.	1907	-	लक्ष्मीबाई तालाब के काम का प्रारम्भ
26.	16 अप्रैल, 1908	-	कर्नल फेरीस को मारने का प्रयास
27.	6 जुलाई, 1908	-	कोल्हापूर में शाहू राजा के मार्ग में बम
28.	जनवरी 1901	-	बीजपुर कर अभियोग
29.	1910	-	राजा शाहू को खून की धमकी
30.	11 जनवरी, 1911	-	सत्यशोधक समाज की स्थापना
31.	1912	-	कोल्हापुर में सहकारी कानून मंजूर
32.	1912	-	मराठों के हाथों वेदोक्त श्रावणी पूजा
33.	15 मई, 1912	-	पाटील प्रमुखों के लिए पाटील स्कूल की स्थापना
34.	मई 1993	-	प्राथमिक शिक्षा के लिए प्रयास
35.	1993	-	सत्यशोधक समाज को वार्षिक सहायता प्रारम्भ
36.	6 जुलाई, 1915	-	मातंग विद्यार्थी को छात्रवृत्ति देने की खास मंजूरी
37.	1916	-	कोल्हापुर तथा करवीर संस्थान में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का कानून लागू किया
38.	जुलाई 1917	-	पुनर्विवाह कानून मंजूर
39.	नवम्बर 1917	-	स्वतंत्र मतदार संघ की माँग (पृथक, निर्वाचक मंडल)
40.	27 दिसम्बर, 1917	-	खामगाँव में ग्यारहवें मराठा शिक्षा परिषद के अध्यक्ष, डॉ. पंजाबराव को प्रोत्साहन

41.	जनवरी 1918	-	कोल्हापुर में आर्य समाज की स्थापना
42.	फरवरी 1918	-	अंतर्जातीय विवाह कानून मंजूर
43.	23 फरवरी, 1918	-	कुलकर्णी वतन बंद, तलाठी पद्धति का प्रारम्भ
44.	1918 फरवरी	-	शिक्षा प्रसार के लिए शिक्षा कर वसूली का आदेश
45.	1918	-	चमार समाज के दत्तेबा पवार की कोल्हापुर नगरपालिका स्थायी समिति में नियुक्ति
46.	3 मार्च, 1918	-	बलूटा कर पद्धति बंद की
47.	26 जून, 1918	-	महारकी तथा महार वतन नष्ट
48.	27 जुलाई, 1918	-	महार, मातंग, रामोशी, बुरुड आदि जातियों को गुनाहगार समझकर पुलिस ठाणे पर हाज़िरी देने की पद्धति बंद
49.	14 दिसम्बर, 1918	-	नवसारी (गुजरात) में आर्य धर्म परिषद के अध्यक्ष
50.	19 से 21 अप्रैल 1911	-	कानपुर उत्तर प्रदेश के सारे कुर्मी क्षत्रियों के तेरहवें परिषद के अध्यक्ष/ राजर्षि उपाधि से गौरव
51.	6 से 8 मार्च 1920	-	भावनगर (सौराष्ट्र) में आर्य धर्म परिषद के अध्यक्ष
52.	22 मार्च, 1920	-	माणगाँव में 'अस्पृश्य वर्ग' परिषद के सामने भाषण। डॉ. अम्बेडकर का सम्मान
53.	15 अप्रैल, 1920	-	नासिक में उदाजी मराठा छात्रावास कोनशिला समारम्भ
54.	16 अप्रैल, 1920	-	नाशिक में 'निराश्रित सोमवंशीय समाज की सभा में भाषण
55.	30 मई, 1920	-	नागपुर में अखिल भारतीय बहिष्कृत समाज परिषद के अध्यक्ष
56.	6 जुलाई, 1920	-	शिवाजी क्षत्रिय वैदिक पाठशाला की स्थापना
57.	27 जुलाई, 1920	-	हुबली कर्नाटक ब्राह्मणेत्तर सामाजिक परिषद् के अध्यक्ष, खून की धमकी

			का उल्लेख।
58.	अक्टूबर 1920	-	हिंदू संहिता मंजूर और पुराने स्मृति के ऊँच-नीच भाव नए हिंदू संहिता से नष्ट।
59.	जनवरी 1921	-	मद्रास में जस्टीस पार्टी के नेताओं से भेंट तथा चर्चा
60.	12 अक्टूबर, 1921	-	क्षात्र जगद्‌गुरु की स्थापना। नए शंकराचार्य
61.	16 फरवरी, 1922	-	दिल्ली में अखिल भारतीय अस्पृश्य परिषद के अध्यक्ष। डॉ. अम्बेडकर आपके नेता हैं। उनका आदर्श सामने रखा। उपस्थित जन समुदाय को संदेश।
62.	8 मार्च, 1922	-	साहूकारों का बंदोबस्त।
63.	26 मार्च, 1922	-	हीरा मदार भंगी की म्युनिसिपल कमेटी में नियुक्ति
64.	6 मई, 1922	-	मुम्बई के पन्हाला गेस्ट हाउस में महापरिनिर्वाण।

अनुक्रमणिका

1	राज्य के 50 प्रतिशत पदों पर बहुजनों की नियुक्ति का आदेश	17
2	हर गाँव-देहात में पाठशाला की स्थापना	20
3	उच्च पदों पर पिछड़ों की नियुक्ति	23
4	पिछड़ी जातियों के लिए छात्रावास	26
5	अछूतों के लिए अलग छात्रावास	29
6	आरक्षण पर शाहूजी महाराज का संघर्ष	33
7	शाहूजी महाराज के पूर्वज और कोल्हापुर	47
8	जन्म एवं बचपन	50
9	पिता का देहांत और संघर्षों की शुरुआत	52
10	पारिवारिक जीवन	56
11	शिक्षा और भारत भ्रमण	61
12	समाज सेवा और शिक्षा के कार्य	64
13	वेदोक्त/ पुराणोक्त विवाद और शाहूजी	69
14	शंकराचार्य की धर्म सत्ता को चुनौती	72
15	अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा	74
16	अस्पृश्यों की हाज़िरी प्रथा की समाप्ति गुलामी से आज़ादी की ओर	79
17	विधवाओं के पुनर्विवाह के लिए कानून	82
18	विरोध! चरित्रहनन और जान से मारने की धमकी	84
19	तिलक और शाहूजी के बीच संघर्ष	89
20	समाज के उद्धार के लिए प्रयास	92
21	सरनेम का उपहार	101
22	अपना धार्मिक संस्कार स्वयं करने के लिए कमजोर वर्गों का आह्वान	103
23	पृथक निर्वाचक मंडल के लिए संघर्ष	107
24	रानी इंदुमती महाराजा शाहूजी की सच्ची उत्तराधिकारी	112

25	कानपुर में अखिल भारतीय कुर्मी समाज सम्मेलन में शाहूजी का आह्वान	115
26	The right of the government on the land of the temples (the priests ran away)	117
27	कुलकर्णी पद की समाप्ति	119
28	अस्पृश्यता पर प्रतिबंध और विशेष प्रयास	123
29	दिल्ली दरबार में शाहूजी का सम्मान	126
30	सोनतली आश्रमः शाहूजी का कैम्प	129
31	डॉ. भीमराव अम्बेडकर के राजनैतिक गुरु और मार्गदर्शक	134
32	युवा पुत्र शिवाजी का देहांत	139
33	निर्वाण : एक युग की समाप्ति	141

राज्य के 50 प्रतिशत पदों पर बहुजनों की नियुक्ति का आदेश

छत्रपति शाहूजी महाराज का यह सबसे क्रांतिकारी कदम था, जिसने आने वाले समाज की दिशा और दशा बदल दी। आज समाज के कमजोर वर्गों को राजकीय सेवाओं में जो भी आरक्षण की सुविधा मिल रही है। उसके पीछे शाहूजी महाराज की ही क्रांतिकारी सोच थी। सम्पूर्ण भारतीय इतिहास में ऐसा पहली बार हुआ था कि बिना किसी संघर्ष के ही किसी शासक ने अपने अधिकारियों में बहुजनों को बुलाकर जगह दी हो। भारतीय इतिहास का यह स्वर्णिम कालखंड था जब किसी शासक ने समाज कल्याण का इतना बड़ा कदम स्वयं उठाया था। वर्ण व्यवस्था की चक्की में सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, राजनैतिक और मानसिक रूप से सदियों से पिस रहे बहुजन समाज की भलाई के कार्य में यह एक आधार स्तम्भ था। इसके लिए देश हमेशा के लिए उनका ऋणी रहेगा।

26 जुलाई, 1902 का ऐतिहासिक दिन बहुजनों के इतिहास में उगने वाले उस सूर्य की तरह था जो आज भी अपनी आभा से देश और दुनिया को आलोकित कर रहा है। इस दिन कोल्हापुर नरेश छत्रपति शाहूजी महाराज ने क्रांतिकारी कदम उठाते हुए शासनादेश के जरिए राज्य की समस्त शासकीय सेवाओं में बहुजनों के लिए 50 प्रतिशत पद आरक्षित कर दिए। यहीं से वह शुरुआत होती है जिस पर आधुनिक भारत की नींव पड़ी और जो आगामी शताब्दी की राजनीति का आधार बनी। उस समय वहाँ की नौकरशाही में शत-प्रतिशत पदों पर ब्राह्मण समाज के लोगों का ही कब्जा था। सनातन हिंदू धर्म के अनुसार तत्समय शिक्षा का अधिकार केवल ब्राह्मणों को ही था। ऐसे में इस समाज का विरोध करना स्वाभाविक था। कहना न होगा कि उस समय का पुरोहित समाज नैतिक रूप से इतना पतित था कि कमजोरों पर अत्याचार करना अपना-शाश्वत धर्म मानता था। कमोबेश आज भी यही स्थिति है। तत्कालीन पुरोहित समाज के द्वारा इस आदेश का पुरजोर विरोध किया गया और तमाम तरह के अनाप-शनाप आरोप लगाए गए कि इस आदेश से राजकीय कार्य की गुणवत्ता

प्रभावित होगी। जो पढ़ना लिखना जानते ही नहीं हैं वह काम क्या करेंगे? उनके आदेश के परिपालन में भी बहुत समस्या आई। वरिष्ठ अधिकारी बार-बार नवनियुक्त अधिकारियों पर आरोप लगाते थे कि इन्हें कार्य करना नहीं आता। महाराज ने स्पष्ट किया की नवनियुक्त अधिकारियों से काम लेने का कार्य वरिष्ठ अधिकारियों का है। उन्हें काम का प्रशिक्षण दिया जाए और काम लिया जाए। आश्चर्य की बात है कि महाराज के इस आदेश का कहीं से समर्थन प्राप्त होना तो दूर, भयंकर विरोध हुआ। उनके इस आदेश का विरोध करते हुए श्री अभ्यंकर नाम के एक अधिकारी दरबार में आ गए और खुलकर विरोध किया कि यह आदेश गलत है और राज्य के हित में नहीं है। महाराज उस समय कुछ नहीं बोले और उन्होंने श्री अभ्यंकर को अगले दिन प्रातः अश्वशाला में आने का निर्देश दिया कि आपसे वहीं पर वार्ता होगी। वहीं पर आपके प्रश्न का उत्तर दूँगा और आप भली तरह समझ पाएँगे। अगले दिन नियत समय पर वह अश्वशाला पहुँचे। वहाँ उन्होंने सभी घोड़ों को देने वाले चारे-दाने को एक जगह एकत्र करा दिया और सभी घोड़ों को बंधन मुक्त कर दिया। वहीं उनके सामने ही जो मजबूत और बड़े घोड़े थे उन्होंने दुलत्ती मार-मार कर कमजोर और छोटी नस्ल के घोड़ों को भगा दिया और सारा चारा-दाना खा गए। कमजोर, बीमार और छोटी नस्ल के घोड़े व बच्चे एक किनारे खड़े होकर तमाशा देखते रहे। यह दृश्य देखकर महाराजा ने कहा कि आपने देख लिया अभ्यंकर, अब इन कमजोर घोड़ों का मैं क्या करूँ? यदि मैं इन्हें मरवा डालूँ तो क्या इससे अश्वशाला और मजबूत होगी। आरक्षण की व्यवस्था इसी तरह की व्यवस्था है जिसमें समाज और देश के सभी समूहों या जातियों को देश की सम्पत्ति में हिस्सा सुनिश्चित किया जाता है। वर्ण व्यवस्था में जो शिक्षा का अधिकार केवल ब्राह्मणों को दिया गया है या उन्होंने जबरिया ले लिया है वह देश और सम्पूर्ण मनुष्यता के लिए अभिशाप है। श्री अभ्यंकर मैं समाज को आपकी अमानवीय व्यवस्था से मुक्ति दिलाना चहता हूँ। अभ्यंकर से कुछ बोलते नहीं बना और वह चुपचाप वापस चले गए।

बाल गंगाधर तिलक जो बहुत बड़े स्वतंत्रता संग्राम सेनानी माने जाते हैं, तक ने इस निर्णय का विरोध किया। इसका कारण भी पुरोहित वर्ग की घृणित मानसिकता में ही समाहित था। उस समय और आज भी मीडिया पर केवल पुरोहित समाज का ही कब्जा है। यह पुरोहित समाज देश का सबसे स्वार्थी और सामाजिक रूप से पतित और घृणित वर्ग है जो केवल अपने स्वार्थ के लिए ही काम करता है। उसे देश से कोई मतलब नहीं है। शाहूजी महाराज के इस कार्य का उनके राज्य में ही भयंकर विरोध हुआ। अधिकारियों ने त्रुटिपूर्ण सूचना पहुँचाई

कि पद रिक्त नहीं हैं। ऐसे में महाराज ने राजाज्ञा कराई कि सभी विभाग अपने कर्मचारियों की गणना कर लें। जहाँ भी बहुजनों की संख्या 50 प्रतिशत से कम है वहाँ ब्राह्मणों की नियुक्ति तब तक न की जाय जब तक वह 50 प्रतिशत की सीमा नहीं पूरी कर लेते। उनके इस आदेश का भी राज्य और आस-पास के सभी समाचार पत्र जो कि ब्राह्मणों के नियंत्रण में थे, ने प्रबल विरोध किया, परंतु शाहूजी महाराज किसी दूसरी मिट्टी के बने थे। उन्होंने अपने आदेश पर पूरी तरह अमल कराया। उनके सख़्त तेवर देखकर पुरोहित सहम गए और उनकी समझ में आ गया कि कोल्हापुर की गद्दी पर कोई साधारण राजा नहीं बैठा है!

डॉ. भीमवराव अम्बेडकर के साथ एक सम्मेलन में शाहूजी महाराज

हर गाँव-देहात में पाठशालाओं की स्थापना

शाहूजी महाराज का दूसरा सबसे क्रांतिकारी आदेश था कि राज्य के सभी गाँवों में प्राथमिक विद्यालय की स्थापना। वर्ष 1913 में उन्होंने इस तरह का आदेश किया और इस कार्य के लिए एक लाख रुपये अनुदान के रूप में स्वीकृत किए। जब उन्होंने कोल्हापुर राज्य की सत्ता संभाली तो उस समय वहाँ की साक्षरता मात्र 1.6 प्रतिशत थी। महाराज ने जब यह आदेश किया, तब इसके क्रियान्वयन में अनेक व्यावहारिक समस्याएँ आई। उस समय जो शिक्षक थे वह सब के सब ब्राह्मण थे और पुरोहित संवर्ग से थे। एक तरफ उनके ज्ञान में केवल पुरातन समय की घिसी-पिटी कहानियाँ ही थीं उसमें जहाँ एक ओर विज्ञान, गणित आदि बहुत ही आदिम अवस्था में थे और दूसरी ओर, वर्ण व्यवस्था की भट्ठी में से तपकर निकले हुए लोग थे जो यह समझते थे कि महाराज का यह कार्य किसी काम का नहीं है वह इन जानवरों को पढ़ा-लिखाकर पता नहीं कौन-सा काम करना चाहते हैं। वह बेमन से शिक्षण कार्य करते थे और साथ ही गैर ब्राह्मणों से ऐसा व्यवहार करते थे कि पहले तो इस सारी कवायद का लाभ केवल ब्राह्मण समाज को ही मिले। किसी तरह से शूद्र समाज के बच्चे आदि आने भी लगे तो जल्दी से जल्दी उन्हें पढ़ाई के नाम पर मार-पीटकर भगा दिया जाए या वह स्वयं भाग जाएँ। महाराज के कई प्रयोग इसी कारण से असफल भी हुए। शिवाजी क्लब को इसी कारण बंद करना पड़ा था। शाहूजी महाराज जो भी नया काम बहुजन समाज के लिए करते थे उसका लाभ ब्राह्मण समाज पहले लेता था और वे लोग भरसक प्रयास यह करते थे कि शूद्र समाज के बच्चे यहाँ तक पहुँच ही न पाएँ। इस संवर्ग की यह नीति आज भी हर समय दिखती है जब ब्राह्मण समाज पिछड़ों के आरक्षण का खुलकर विरोध करता है। शूद्र समाज के परिवार आर्थिक रूप से अत्यंत विपन्न अवस्था में थे वह अपने बच्चों को भी अपने काम में लगाए रहते थे। बच्चों को स्कूल भेजने पर उनका नुकसान होता था। साथ में ब्राह्मण समाज बरगलाने के लिए हर समय तैयार बैठा रहता था कि पढ़-लिखकर होगा क्या? करना तो खेती ही है। ऐसी दशा में शाहूजी महाराज ने निःशुल्क पढ़ाई की योजना

शाहूजी महाराज

बनाई और यह आदेश किया कि प्रत्येक विद्यालय में शूद्र समाज के 15 बच्चों की फीस माफ की जाएगी। इस योजना में कुछ ही समय के बाद यह जानकारी मिली कि इस शुल्क मुक्ति के होते हुए भी शूद्र समाज के बच्चे पढ़ने नहीं आ रहे हैं और शुल्क मुक्ति का सारा लाभ ब्राह्मण समाज के लोग अपने को गरीब दिखा कर ले रहे हैं। ऐसे में उन्होंने दोबारा यह आदेश किया कि 15 सीटों में से केवल आधी सीटें समाज के बच्चों के न मिलने पर ब्राह्मणों दी जाए, शेष खाली रखी जाए। इस आदेश से शुल्क मुक्ति योजना का सार्थक प्रभाव पड़ा। शूद्र समाज के सामने समस्या यह थी कि वह कमाई करें या पढ़ाई करें। अतः इन विद्यालयों में निःशुल्क अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की गई। यहाँ हमें लालू प्रसाद यादव की चरवाहा विद्यालय की संकल्पना याद आती है कि समाज के बच्चे चारागाह में अपने जानवर छोड़ दें और पढ़ाई करें। छुट्टी होने पर अपने जानवरों को लेकर घर जाएँ। यह ऐसा आदेश था जिसे आगे चलकर भारत सरकार ने अपने मूल सिद्धांतों में शामिल किया। दूसरी समस्या यह आई कि पर्याप्त संख्या में शिक्षक नहीं थे, जिनकी सहायता से यह योजना चल पाती। उस समय कक्षा 8 तक की पढ़ाई को वर्नाकुलर कहा जाता था। इस स्तर तक भी पढ़े-लिखों की संख्या इतनी नहीं थी कि वहाँ शिक्षकों की नियुक्ति की जाती। अतः यह आदेश किया गया कि सभी ऐसे कर्मचारी, जिनकी उम 25 वर्ष से कम है, को अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के काम में लगाया जाए।

शिक्षा व्यवस्था में सुधार के लिए उन्होंने शिक्षा अधिकारी का पद ऊँचा किया और उसका वेतन रुपया 287.00 निर्धारित किया। शिक्षकों का वेतन भी उन्होंने बढ़ाया ताकि पढ़े-लिखे लोग शिक्षक बनने को उत्साहित हों। उस समय लोग शिक्षक बनाने की जगह दरबार में नौकरी करना अधिक पसंद करते थे।

उच्च पदों पर पिछड़ों की नियुक्ति

शाहूजी महाराज का यह मानना था कि राजकीय पदों पर जब तक पिछड़ों को नहीं लाया जाएगा तब तक उनको मजबूत नहीं बनाया जा सकता। 19वीं सदी में इस तरह की सोच एक क्रांतिकारी दिमाग की ही उपज हो सकती है। वर्ण व्यवस्था की जकड़न में जड़वत हुए समाज में पिछड़ों अस्पृश्यों और जंगली जातियों को राजकीय पद देना वह भी भारतीय महाराजा के द्वारा अपने आप में अद्वितीय है। इसी नीति के तहत उन्होंने समाज के पिछड़े और कमजोर वर्ग के लोगों जिसमें मराठा और चमार प्रमुख थे, को सरकारी पदों पर नियुक्ति की परिपाटी प्रारभ की। सम्पूर्ण भारतीय इतिहास में यह कार्य किसी राजा ने पहली बार किया था। उनके इसी कार्य का परिणाम था कि 1894 में कुल 124 पदों में 18 पदों पर गैर ब्राह्मण अधिकारी कार्यरत थे। वहीं वर्ष 1922 में कुल पदों 247 में से 160 पद पर गैर ब्राह्मण तैनात कर दिए जाते हैं। इस तरह से 28 वर्षों में राजकीय पदों पर गैर ब्राह्मणों की संख्या 14.15 प्रतिशत से बढ़कर 64.7 प्रतिशत हो जाती है। अर्थात 400 प्रतिशत की वृद्धि हो जाती है। (*विद्रोही छत्रपति महाराज शाहू पृष्ठ संख्या 129 एवं राजर्षी शाहू राजा माणूस पृष्ठ 245*)

वर्ष 1894 में जब शाहूजी महाराज ने कोल्हापुर का कार्यभार संभाला तो कोल्हापुर राज्य की स्थिति अन्य देशी राज्यों जैसी ही थी। वहाँ पर अप्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश रेजीडेंट का ही शासन था। जैसा कि अन्य राज्यों में हुआ था कि देशी ब्राह्मण अधिकारी, अंग्रेज अफसरों के साथ मिलकर शासन-सूत्र अपने हाथ में लेकर मनमानी करते थे। वैसी ही स्थिति कोल्हापुर की भी थी। ऐसी दशा में शाहूजी महाराज सबसे पहले पिछड़े समाज में पढ़े-लिखों की खोज में लग गए, जिससे शासन में उन्हें शामिल किया जा सके और पुरोहितों के गठजोड़ को तोड़ा जा सके। बहुजन समाज के लोगों को लिए बिना शासन-सूत्र अपने हाथ में ले पाना सम्भव नहीं था। इस कार्य को शुरू करने के लिए उन्होंने वर्ष 1894 में *डेक्कन एजुकेशन सोसायटी* की स्थापना की। इस समिति के माध्यम से समाज के पढ़े-लिखों को खोज की जाती थी और मेधावी छात्रों को आगे पढ़ने में सरकार

की ओर से सहायता भी की जाती थी। इसी क्रम में श्री भास्कर राव बिठोजी जाधव, जो कि मराठा समाज से थे और बीए पास किया हुआ था, को उप-मुख्य सचिव कोल्हापुर सरकार में नियुक्त कर दिया। राज्य के हुजूर सेक्रेटरी का पद रघुनाथ व्यंकोजी सबनीस को दिया गया। इसी तरह राज्य के मुख्य अभियंता श्रीशानन के अवकाश पर जाने बाद उनके स्थान पर बहुजन समाज के दाजिराव विचारे को मुख्य अभियंता नियुक्त किया। महाराज के इन कार्यों को देखकर पुरोहित और अंग्रेज अधिकारी नाराज होने लगे और उनके विरुद्ध पत्रों के माध्यम से विष-वमन करने लगे। इतने से काम नहीं बना तो त्यागपत्र देने लगे। महिला शिक्षा अधिकारी कुमारी एच. लिटिल ने विरोध में अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। इस खाली हुए पद पर भी शाहूजी महाराज ने राधाबाई कृष्णराव केलकर की नियुक्ति कराई। इन नियुक्तियों से कोल्हापुर की जनता ने एक नए युग में प्रवेश किया। मराठा समाज को यह लगने लगा कि वह लोग भी पढ़-लिखकर ऊँचे पद पर जा सकते हैं। शिक्षा केवल ब्राह्मणों की बपौती नहीं है।

अपने इन सुधारवादी कार्यों के चलते उन्हें कई प्रशासनिक दिक्कतों का सामना करना पड़ा। अपराधियों को फाँसी देने का अधिकार उन्हें नहीं था जिसके कारण कई बड़े जघन्य अपराधी मुक्त हो जाते थे। उन्होंने मुम्बई के ब्रिटिश गवर्नर से इस अधिकार को अवमुक्त करने का अनुरोध किया। मुम्बई के गवर्नर ने तत्काल तो यह अधिकार अवमुक्त नहीं किया लेकिन उनके लोकप्रिय कार्यों के चलते महारानी विक्टोरिया से महाराजा को सम्मानित करने का अनुरोध अवश्य किया। इस क्रम में आगे बढ़ते हुए महारानी विक्टोरिया ने उन्हें वर्ष 1895 में *नाइट ग्रैंट कमांडर ऑफ द मोस्ट एक्जाल्टेड ऑर्डर ऑफ द स्टार ऑफ इंडिया* की पदवी से सम्मानित किया। इस सम्मान को देने के लिए महारानी विक्टोरिया की ओर से मुम्बई के गवर्नर ने 18 सितम्बर, 1895 को पूना के राजकीय हाल में इस सम्मान से विभूषित किया। एक देशी राजा को इस तरह का सम्मान एक अभूतपूर्ण घटना थी।

शाहूजी महाराज

पिछड़ी जातियों के लिए छात्रावास

शिक्षा एक ऐसा संस्कार है, जो मनुष्य को जानवरों से पृथक करता है। बोली और सभ्यता के अतिरिक्त अशिक्षित व्यक्ति और चतुष्पद जानवर के बीच शिक्षा और विशेष रूप से सामाजिक शिक्षा ही अंतर स्पष्ट करती है। यह मानवीय जीवन को सभ्य और सुसंस्कृत बनाती है यह ज्ञान का द्योतक, समृद्धि और शक्ति का मूल आधार है। सुदृढ़ समाज का आधार ही शिक्षा है। यह हमारे लिए अत्यंत दुख की बात है कि हमारे ही समाज के पुरोहित वर्ग के द्वारा ऐसे नियम बना दिए गए थे कि समाज और देश की बहुसंख्यक आबादी को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार ही नहीं था। समाज का बहुसंख्यक वर्ग बाकायदा वर्ण व्यवस्था के कानून के अनुसार शिक्षा प्राप्त करने के लिए अधिकृत ही नहीं था। मराठी में यह कहावत मशहूर थी- *कुनबी का दाना, ढेरों का गाना और ब्राह्मणों का पढ़ना और पढ़ाना*। शिक्षा केवल एक विशेष संवर्ग के लिए ही कानूनी तौर पर विहित की गई थी। केवल ब्राह्मण ही शिक्षा लेने और देने के लिए अधिकृत थे और वह खुलेआम सभी के लिए शिक्षा का विरोध करते थे। तत्कालीन नेता बाल गंगाधर तिलक ने तो यहाँ तक कह डाला था कि बहुसंख्यक जनता के लिए शिक्षा पर धन खर्च करना राज्य के संसाधनों की बर्बादी है और यह कर देने वाले लोगों के धन का अपव्यय है। शाहूजी महाराज ने समाज की इस विषमता को समझा और बहुसंख्यक जनता की शिक्षा के लिए विद्यालय खुलवाए। इस रास्ते में उन्होंने यह अनुभव किया कि मात्र विद्यालय ही शिक्षा व्यवस्था के लिए पर्याप्त नहीं है। विद्यालय के साथ-साथ विद्यार्थियों के लिए छात्रावास भी आवश्यक है, जिससे उन्हें भली प्रकार उच्च शिक्षा दिलाई जा सके। तत्समय जाति व्यवस्था इतनी मजबूत थी कि एक जाति का आदमी दूसरी जाति के हाथ का कुछ भी खाना-पीना पसंद नहीं करता था। इसी कारण उन्हें लगभग प्रत्येक जाति के लिए अलग-अलग छात्रावासों की स्थापना करनी पड़ी। अपने इसी मिशन को आगे बढ़ाते हुए एक-एक कर उन्होंने 23 छात्रावासों की स्थापना की। इनका विवरण निम्नवत है-

1. कोल्हापुर में राजकीय छात्रावास, वर्ष 1896

2. मराठा छात्रावास, वर्ष 1901
3. जैन छात्रावास, वर्ष 1901
4. मुस्लिम छात्रावास, वर्ष 1906
5. लिंगायत छात्रावास, वर्ष 1907
6. मिस क्लार्क छात्रावास (अस्पृश्यों के लिए), वर्ष 1908
7. दैवज्ञ शिक्षा समाज हॉस्टल, वर्ष 1908
8. नामदेव छात्रावास, वर्ष 1911
9. पांचाल ब्राह्मण छात्रावास, वर्ष 1911
10. सबनीस प्रभु छात्रावास, वर्ष 1912
11. सावित्री बाई गौड़ छात्रावास, वर्ष 1915
12. इंडियन क्रिश्चन छात्रावास, वर्ष 1915
13. आर्य समाज छात्रावास, वर्ष 1918
14. वैश्य समाज छात्रावास, वर्ष 1918
15. ढोर चमार छात्रावास, वर्ष 1918
16. वैदिक छात्रावास, वर्ष 1919
17. सरदार छात्रावास, वर्ष 1920
18. आर्य क्षत्रिय छात्रावास वर्ष 1920
19. देवांग कोष्ठी (बुनकर) छात्रावास, वर्ष 1921
20. सुतार छात्रावास, वर्ष 1921
21. प्रिंस शिवाजी मराठा फ्री हॉस्टल, वर्ष 1920
22. नाभिक छात्रावास (शिव कंठी शेष समाज), वर्ष 1921
23. बोहारी समाज छात्रावास, वर्ष 1921

शिक्षा के लिए इतने छात्रावासों की स्थापना भारतीय इतिहास में किसी दूसरे शासक ने नहीं की, इसीलिए कोल्हापुर को 'मदर ऑफ हॉस्टल्स' और शाहूजी महाराज को 'फादर ऑफ हॉस्टल्स' कहा जाता है। जैसा कि आज का समय है। पुरोहित समाज यह आरोप अवश्य ही लगाएगा कि विभिन्न जातियों के लिए अलग-अलग छात्रावास खोलकर शाहूजी महाराज ने जाति प्रथा को बढ़ावा दिया। ऐसे लोग यह भूल जाते हैं कि तत्समय ब्राह्मण समाज ही नहीं, कोई भी समाज दूसरे समाज के लोगों किसी के भी साथ उठना-बैठना पसंद नहीं करता था। इसीलिए मजबूरी में उन्हें अलग-अलग छात्रावासों की स्थापना करनी पड़ी और इस स्थापना में पुरोहित समाज ने सहयोग करने की बजाय कदम-कदम पर विरोध किया था। इसी विरोध के चलते उन्हें *शिवाजी क्लब* बंद करना पड़ा था।

शाहूजी महाराज की प्रतिमा

अछूतों के लिए अलग छात्रावास

वर्ग व्यवस्था के अनुसार शिक्षा केवल ब्राह्मणों के लिए ही विहित थी। यही कारण है कि तत्समय केवल ब्राह्मण ही शिक्षित थे। साफ-साफ यह कहने में कोई आपत्ति नहीं है। उस समय और आज भी किसी समाज में शिक्षास्तर ब्राह्मणों के बराबर नहीं है। उस समय भी ब्राह्मणों में शिक्षा का प्रतिशत 90 से अधिक था जबकि मराठों में यह स्तर मात्र 4 प्रतिशत था। मराठे अस्पृश्य नहीं थे, तब उनकी यह स्थिति थी। यह तो स्वयं विचारणीय और कल्पनीय है कि जिस समाज की परछाई भी अपवित्र कर देती हो वहाँ शिक्षा का स्तर क्या होगा? जिसके हाथ का छुआ हुआ निषिद्ध हो, उसे कौन पढ़ने देगा? और पढ़ाएगा कौन?

शाहूजी महाराज ने इसी समस्या के समाधान के लिए पृथक छात्रावास प्रणाली प्रारम्भ की। वह भली-भाँति जानते थे कि जब समाज में विभेद इतने गहरे हैं तो पृथक छात्रावास ही इसका उपाय हो सकता है। इस पर कार्य करते हुए उन्होंने विशेष रूप से अछूत छात्रों के लिए अलग छात्रावास खुलवाए इनमें से प्रमुख छात्रावासों का विवरण निम्नवत है।

1. नासिक में अस्पृश्य छात्रावास- वर्ष 1920
2. सोन तली कैम्प छात्रावास
3. रूकडी कैम्प छात्रावास
4. मिस क्लार्क छात्रावास- वर्ष 1908
5. आर्य समाज गुरुकुल वुड हाउस छात्रावास- वर्ष 1911
6. ढोर-चमार छात्रावास- वर्ष 1919
7. अस्पृश्य छात्रावास पंढरपुर- वर्ष 1920
8. सोमवंशी डिप्रेस्ड क्लास बोर्डिंग हाउस नासिक- वर्ष 1920
9. चोखामेला बोर्डिंग हाउस

अस्पृश्य छात्रों को प्रोत्साहित करते हुए उन्होंने राजाराम हाइस्कूल और राजाराम विद्यालय दोनों में ही निःशुल्क शिक्षा और निःशुल्क प्रवेश का आदेश किया। (हुजूर ठराव नम्बर 662, तारीख 24.09.1911) के अनुसार इन स्कूलों

में उनसे कोई शुल्क नहीं लिया जाना था। गौरतलब है कि एक ऐसा राजा जो इतना परोपकारी था, लेकिन वह हमारी व्यवस्था को रास नहीं आया। कारण, वर्ण व्यवस्था की घृणित व्यवस्था जो सीधे लूट-मार पर आधारित है, का अनियंत्रित रूप से दिलो-दिमाग पर हावी होना।

अपने बेटे चिरंजीव शिवाजी के स्मरणार्थ उन्होंने 10 हजार रुपये अलग से रखे थे, जिसके ब्याज से अछूत छात्रों की छात्रवृत्ति की व्यवस्था की गई थी। इन अछूतों की दशा इतनी दयनीय थी कि जिन कामों में इन्हें महारत हासिल थी उनके लिए भी इन्हें जगह कदापि नहीं मिलती थी। समाज का भी कुछ अच्छा था या हो सकता था, वह सब इनके लिए निषिद्ध था। यहाँ तक कि हमारे विद्वान भी पूरी तरह से लूट-मार पर आधारित व्यवस्था के ही पोषक थे। शाहूजी महाराज ने सबसे पहले इन जातियों के लोगों में उनके मजबूत पक्ष का पता लगाया। यह लोग बहुत ही बलिष्ठ, शिकार करने में अत्यंत निपुण और स्वभाव से ईमानदार थे अतः उन्होंने अपने व्यक्तिगत सेवक इसी समाज से रखें। इन लोगों को उन्होंने मल्ल युद्ध, कुश्ती और घुड़सवारी के लिए प्रेरित किया। पीढ़ी दर पीढ़ी शिकार का काम करते हुए ये लोग जन्मजात शिकारी होते थे, उनका निशाना अचूक होता था। शाहूजी महाराज ने अपने शिकार दस्ते में इन्हीं लोगों को रखा था। इनके अंदर सदियों से जो हीन-भावना ठूँसी गई थी उसे निकालने के लिए इनके नाम के पीछे अच्छे और सम्मानजनक उपनाम जैसे सिंह, रायबहादुर, खान, पटेल, चौधरी, साहब आदि लगवाए। समाज में इन लोगों को आगे बढ़ाने के लिए बहुत सारे छोटे स्तर के पदों पर महार समाज के लोगों की नियुक्ति की। इसी क्रम में इस समाज की स्थिति को उन्नत बनाने के लिए पुलिस विभाग में इनकी भर्ती के लिए शासनादेश किया। 31 जुलाई को यह आदेश किया कि करवीर राज्य के 16 महारों को पुलिस विभाग में नियुक्त किया जाए। यदि किसी सेवक को आठ माह तक किसी दूसरे गाँव में रुकना पड़े और दूरी 12 मील से ज़्यादा हो तो उसे ढाई रुपये प्रतिमाह अतिरिक्त भत्ता दिया जाए।

तलाठी स्कूल में जो भी महार विद्यार्थी प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हों उन्हें 10 रुपया प्रतिमाह छात्रवृत्ति दी जाए। (17 अगस्त 1911 *मुकाम कल्याण*)।

इसी अभियान के तहत उन्होंने महारों की क्लर्क पद पर भर्ती करना प्रारम्भ किया। इसी समय यह प्रसिद्ध कहानी आती है कि पहली बार जब उन्होंने शिक्षित महार युवक को क्लर्क पद पर भर्ती किया तो उसके काम में त्रुटियाँ निकाल कर ब्राह्मण अधिकारियों के द्वारा उसका वेतन रोक दिया गया और बताया गया कि इसका काम सही नहीं है और ये लिपिक पद के लायक ही नहीं हैं। यह बात

महाराज तक पहुँची। शाहूजी महाराज ने न्यायाधीश को यह कहकर लताड़ा कि आपकी इतनी लम्बी सेवा हो गई हैं आप नए स्टाफ से ऐसे ही काम लेते हैं। आप यही चाहते हो न कि आपकी जाति का कर्मवारी रखा जाए? आपने इसके प्रशिक्षण की क्या व्यवस्था कराई है? ब्राह्मण अधिकारी से कुछ कहते नहीं बना। उन्होंने कहा कि आप न्यायाधीश हो। मैं यदि आपसे कहूँ कि आप हाथी को सेना के लायक बनाओ और इसकी कोई ट्रेनिंग न दूँ तो आप यह काम कर पाएँगे? स्टाफ से काम लेने का ढंग भी होना चाहिए। सबसे पहले उसके प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए फिर काम का मूल्यांकन होना चाहिए। न्यायाधीश महोदय मुँह लटका कर चले गए। इस घटना के बाद नए कर्मचारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई।

शाहूजी महाराज

आरक्षण पर शाहूजी महाराज का संघर्ष

सदियों से लेखनी अपने हाथ में न रहने के कारण हमारा अपना इतिहास वर्ण व्यवस्था में शीर्ष पर कुंडली मारकर बैठे समाज के लगातार झूठ, फरेब और कुटिल मक्कारी का शिकार हो गया। हमें ऐसा लगने लगा कि किसी दैवीय शक्ति के चलते हमें आरक्षण और सत्ता में भागीदारी मिली है।

ऐसा नहीं है सत्ता और देश की सम्पत्ति में भागीदारी जिसे हम आरक्षण के नाम से भी जान और समझ सकते हैं। वह हमारे पुरखों के दशकों लम्बे संघर्ष के चलते प्राप्त हुई है और उसके पीछे एक विदेशी और न्यायप्रिय सत्ता का हाथ रहा है। जिसने मानवता के आधार पर हमारे देश में वर्ण व्यवस्था जैसी घृणित और अमानवीय व्यवस्था को समाप्त करने में समाज के कमजोर वर्गों को सुना, समझा और सहारा दिया। उदाहरण के लिए आज के किसान आन्दोलन में 700 किसानों की मौत के बाद उसका वापस लेना और इसमें हुई मौतों को लावारिस मान कर छोड़ देना, उसकी कोई बात नहीं करना, 69000 भर्ती में धांधली के विरोध में 6 माह से धरने का कोई असर न होना यह सिद्ध करता है कि वर्ण व्यवस्था के शीर्ष पर बैठे लोग कितने धूर्त, कुटिल और बर्बर हैं। यह हमेशा से ऐसे ही रहे हैं। यह तो विदेशी सत्ता का दबाव था कि सत्ता में कुछ भागीदारी मिल सकी। इसके पीछे शाहूजी महाराज, माता सावित्रीबाई फुले, बाबा साहब का लम्बा संघर्ष रहा है। मानवता के इस संघर्ष में शाहूजी महाराज के द्वारा जो सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए वे आज भी मील के पत्थर हैं। शाहूजी महाराज के द्वारा इस दिशा में कार्य करते हुए तीन बड़े सम्मेलन कराए गए। इनका विवरण निम्नवत है।

1. खामगाँव परिषद

आरक्षण के इतिहास में यह पहली सभा आयोजित की गई थी या यों कहें समाज के पिछड़ों और दलितों के हितार्थ देश का यह पहला आयोजन था। 27 दिसम्बर, 1917 को खामगाँव में आयोजित 11वीं अखिल भारतीय मराठी शिक्षा परिषद में बोलते हुए शाहूजी महाराज ने मराठों के लिए स्वतंत्र मतदार संघ अर्थात

पृथक निर्वाचन मंडल की जोरदार वकालत की। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि मराठों की स्थिति मुसलमानों से भी कमजोर है। मुसलमानों की संख्या कम है परंतु वे बहुत लम्बे अरसे तक सत्ता में रहे हैं। इसके विपरीत मराठों की संख्या कुल आबादी के 60 प्रतिशत से अधिक है। परंतु वर्ण व्यवस्था के कुटिल, धूर्ततापूर्ण और अमानवीयता की सीमाएँ पार कर जाने वाले प्रतिबंधों के चलते इनकी स्थिति दो पैरो पर चलने और बोलने वाले जानवर से ऊपर की नहीं बची है। सदियों तक कानून बनाकर जबरन शिक्षा से दूर रखे जाने के कारण यह वर्ग मानसिक गुलामी की पराकाष्ठा पर पहुँच गया है, जहाँ अत्याचार को प्रभु का प्रसाद मान कर सहर्ष ग्रहण करता है और बदले में शुक्रिया ज्ञापित करते हुए शुल्क भी देता है। ऐसी दशा में इस वर्ग को पृथक मतदार संघ या पृथक निर्वाचन मंडल दिए बिना इसका कल्याण होने वाला नहीं है। हमें स्वराज चाहिए लेकिन एक ऐसा स्वराज जिसमें सभी जातियों या अंतर्विवाही समाजों को मानवीय अधिकार प्राप्त हो, सबको शिक्षा, नौकरी और देश के संसाधनों में बराबर का हिस्सा मिले। हमें ऐसा स्वराज नहीं चाहिए जिसमें देश के सारे संसाधनों पर केवल एक ही संवर्ग अर्थात ब्राह्मणों का कब्जा हो। हमें ऐसा स्वराज चाहिए जिसमें सभी समाजों को बराबर मानवीय अधिकार मिलें। अब चूँकि देश में सभी की बराबर हिस्सेदारी और भागीदारी तो दूर, पढ़ने-लिखने के अधिकार भी नहीं हैं और समाज का एक बड़ा हिस्सा पशुवत जीवन जीने के लिए मजबूर है। इसलिए इस समाज के साथ न्याय तभी हो सकता है जब इनके प्रतिनिधियों को इनके समाज से ही चुना जाए और इन्हें विधानसभाओं में भेजने की व्यवस्था की जाए। यदि इन्हें पृथक प्रतिनिधि चुनने का अधिकार नहीं दिया जाएगा तो ये मात्र पुरोहितों के पिट्ठ और दलाल ही बन कर रह जाएँगे और इनका कभी विकास नहीं हो पाएगा।' (वर्तमान व्यवस्था में यही हो रहा है)

महाराजा शाहूजी ने लार्ड विलिंगडन को एक पत्र लिख कर बताया कि 'देश में बहुसंख्यक आबादी को बराबरी पर लाने के लिए केवल बराबरी का कानून कदापि पर्याप्त नहीं है। एक विशेष संवर्ग अर्थात ब्राह्मण जो कि देश के समस्त संसाधनों, शिक्षा, सम्पत्ति पर काबिज है और मात्र काबिज ही नहीं है, वरन अनियंत्रित रूप से काबिज है, से बराबरी के स्तर पर आने के लिए खेती और उससे जुड़े व्यवसायों से जुड़े लोगों और अछूतों के लिए विशेष प्रावधान करने होंगे। और उन्हें देश की सम्पत्ति में हिस्सेदारी दिलाने के लिए विशेष कानून बनाने होंगे। इस कार्य के लिए विधायिका में यह व्यवस्था करनी होगी, जिससे उनके समाज के ऐसे प्रतिनिधि, जिनका चयन उन्हीं के समाज के लोगों से किया जाए,

एकमात्र रास्ता है। ऐसा न होना इन वर्गों के साथ नाइंसाफी होगी और यह कभी प्रगति नहीं कर पाएंगे। ऐसा न करना उन्हें शेरों नहीं गिद्धों और भेड़ियों की दया पर छोड़ देना होगा। निश्चित रूप से यह मानवता के साथ एक बहुत बड़ा अन्याय होगा।

स्वदेशी आंदोलन : एक मजाक

यह स्वदेशी, राष्ट्रीय आंदोलन और स्वराज का सबसे बड़ा मजाक है कि इन वर्गों के साथ सबसे बड़ा अन्याय इनके देशवासियों ने ही किया है। उनके अपने देशवासियों ने इन्हें सदियों से आदमी नहीं समझा और पशुओं जैसा व्यवहार किया। यह लोग हिज मेजेस्टी के शासन को आशापूर्ण निगाहों से देख रहे हैं। यदि ऐसा न हुआ और मराठों को विशेष संरक्षण न दिया गया तो पहले से ही सत्ता पर काबिज ब्राह्मणों के हाथ में सम्पूर्ण सत्ता दोबारा आ जायगी और यह उनके काले कानून *मनुस्मृति* और वर्ण व्यवस्था के चलते मानवता और देश के कमजोर वर्गों की अतिशय हानि होगी। जैसा कि बिहार राज्य के एक उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगा। दरभंगा के महाराजा ने ब्राह्मणों और पुरोहितों के दबाव में आ कर निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा तो लागू कर ली परंतु अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा नहीं लागू की। वह इस तर्क को मान गए कि जिसे पढ़ने की इच्छा न हो उसे जबरदस्ती पढ़ाई करने को मजबूर नहीं किया जाएगा। अर्थात उन्होंने प्राथमिक शिक्षा की अनिवार्यता को समाप्त कर दिया। नतीजा हम समझ सकते हैं कि शिक्षा पर ब्राह्मणों का एकाधिकार बना रहा। अन्य सभी वर्गों कों यह कह कर स्कूल से खदेड़ दिया गया कि ये पढ़ना ही नहीं चाहते।'

इस पत्र के प्रत्युत्तर में 16 अक्टूबर, 1918 को लार्ड मोंटेग्यू ने पत्र के माध्यम से अपनी बात रखने और समाज की वस्तुस्थिति से अवगत कराने के लिए शुक्रिया अदा किया और कहा कि समय आने पर निश्चित रूप से इन पर विचार कर कार्यवाही की जाएगी।

10 नवम्बर, 1918 को मुम्बई के परेल विभाग में आयोजित पिछड़े लोगों की एक सभा में बोलते हुए शाहूजी महाराज ने बताया कि पाश्चात्य देशों में हमारी तरह जाति व्यवस्था नहीं है वहाँ केवल दो वर्ग होते हैं भूमिधर और धनी वर्ग तथा मजदूर वर्ग। धन सम्पदा अर्जित कर कोई भी व्यक्ति कोई भी काम कर सकता है। वहाँ कहीं भी किसी व्यक्ति को कोई काम को करने पर रोक नहीं है। प्रभु वर्ग का बहुत वर्चस्व वहाँ भी है परंतु मजदूरों के अपने संगठन हैं जो एक हो कर अपनी माँग मनवा लेते हैं। इसी तरह के संगठन हमारे देश में भी होने चाहिए। कारखाने में काम करने वाले मजदूर और किसान एक ही संवर्ग के हैं।

इनका आपस में एक संगठन होना चाहिए। संगठित होकर ही हम अपनी लड़ाई लड़ सकते हैं। अपने देश में प्रचलित वर्ण व्यवस्था, जिसमें सभी लोगों के रोजगार पहले से ही तय है। ऐसा नहीं है। वहाँ का मजदूर भी पढ़ा-लिखा होता है। अपने यहाँ जैसे पढ़ाई-लिखाई पर प्रतिबंध नहीं है, सभी को पढ़ने-लिखने का अधिकार है। इसी तरह से हमारे देश में भी सभी को पढ़ने और आगे बढ़ने का अधिकार होना चाहिए। हम आपके माध्यम से ब्रिटिश सरकार से यह माँग करते हैं कि देश के प्रचलित कानूनों में बदलाव कर यूरोप की तरह की संस्कृति व्यवस्था लागू करे। 1917 में रूप की बोल्शेविक क्रांतिका शाहूजी महाराज ने खुलकर समर्थन किया। रूसी क्रांति मजदूरों की क्रांति थी। देश में मजदूरों का समर्थन करने वाले शाहूजी पहले और एकमात्र राजा थे।

23 जून, 1919 को मुम्बई के राज्यपाल को लिखे अपने पत्र में वह लिखते हैं- समाज के पिछड़े और अस्पृश्य वर्ग के लोगों को दुखों से बाहर निकालना मेरा परम कर्तव्य है। समाज के पिछड़े और बहुसंख्यक वर्ग की सेवा ही समाजसेवा और मानवता की सेवा है। जो सशक्त हैं, सबल हैं, दुर्भाग्य से वही शोषक हैं। *मनुस्मृति* और वर्ण व्यवस्था में। यदि मेरा कोई कार्य इन सशक्त वर्गों के विरुद्ध चला जाता है तो उसका इन्हें बुरा नहीं मानना चाहिए। परंतु अच्छा या बुरा मानना तो दूर वे धूर्तता से मुझे गलत साबित करने में लगे रहते हैं। कमजोरों पर अत्याचार मुझसे बर्दाश्त नहीं होता है। चूँकि जो सबसे अधिक पिछड़े और दबे कुचले हैं, जिन्हें पशुओं के मल-मूत्र से भी निकृष्ट और घृणित माना जाता है, उन्हें सामाजिक और सांस्कृतिक दासता से बाहर निकालना सभी का कर्तव्य है। इस दासता से बाहर निकालने के लिए उनके समाज से उनके सच्चे नेता पैदा करना अत्यन्त आवश्यक है। जब तक उनके अपने समाज से योग्य और जुझारू नेता नहीं पैदा होंगे, उनका कल्याण नहीं हो सकता है। इसीलिए मैंने सरकार के समक्ष यह माँग रखी है कि अस्पृश्य और पिछड़े मराठा लोगों को स्वतंत्र मतदार संघ (पृथक निर्वाचन मंडल) दिया जाए। उनका अपना निर्वाचक मंडल हो जिसमें केवल वे वोट देकर अपने नेता का चुनाव करें। (इसका विस्तृत विवरण अलग अध्याय में दिया गया है)। यदि ऐसा नहीं हुआ तो कितना भी आरक्षण क्यों न दे दिया जाए इन वर्गों का उद्धार नहीं हो सकता।

2. माणगाँव परिषद

20 मार्च, 1920 को करवीर स्टेट में कागल जागीर के माणगाँव में अस्पृश्यों की यह दूसरी परिषद आयोजित की गई। शाहूजी महाराज इसके प्रमुख आयोजक थे। यह महाराज का अपना क्षेत्र था अतः सारी व्यवस्था उन्हीं की थी। श्री दत्तोबा

पवार, डॉ. रमाकान्त कांबले, गंगाराम यमाजी कांबले, तुकाराम गणचार्य, शिवराम कांबले, रामचन्द्र कांबले, निगप्पा एदाले, दादा साहब शिर्के, अप्पाजी वाघमारे जैसे क्रांतिकारी महापुरुषों ने इसके आयोजन में दिन-रात एक कर कार्य किया था। मुम्बई के बैरिस्टर तल्यारखान पारसी, भास्करराव जाधव, अन्ना साहब लट्ठे आदि सत्यशोधक समाज के कार्यकर्ता इस आयोजन में सक्रिय थे। इन सबसे आगे इस कार्यक्रम की खास पहचान थे डॉ. भीमराव अम्बेडकर जो इस परिषद के अध्यक्ष थे। इस कार्यक्रम में बोलते हुए शाहूजी महाराज ने कहा, 'मेरे प्रिय मित्र डॉ. अम्बेडकर के विचारों का लाभ लेने मैं यहाँ आया हूँ। डॉ. अम्बेडकर *मूकनायक* नाम का पत्र निकालते हैं और पिछड़े हुए सारे समाज की बेहतरी के लिए काम करते हैं। इसीलिए मैं उनका पूरे मनोयोग से अभिनंदन करता हूँ। स्वागत करता हूँ। वंदन करता हूँ। मैंने हाजिरी नामक घिनौनी प्रथा कानून बनाकर समाप्त कर दी है। बिना कोई गुनाह किए ही किसी को बाधित करना, निरुद्ध रखना मेरी ही नहीं हिज मैजेस्टी को भी स्वीकार्य नहीं है। बहुत छोटे से भूमि के टुकड़े, जिससे एक परिवार का पालन-पोषण नहीं हो सकता, के लालच में इनका जीवन बर्बाद हो रहा है। यह उत्तर भारत की बंधुआ मजदूरी से भी अधिक उत्पीड़क प्रथा है। अब हाजिरी समाप्त होने के बाद वे गाँव छोड़कर बाहर आ जा सकते हैं। अपने अनुसार अपने व्यवसाय का चुनाव कर सकते हैं (वर्ण व्यवस्था के अनुसार वह कोई और रोजगार नहीं कर सकते थे, उन्हें अपने काम को छोड़कर दूसरे काम करने से रोकना और अपने पुश्तैनी धंधे में लगाए रखना प्रत्येक हिंदू शासक का पहला कर्तव्य था) और सिर उठाकर जीवन जी सकते हैं। वे आजाद हैं, वे कहीं भी जाएँ, उन्हें कहीं सूचना देने की कोई आवश्यकता नहीं है। किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं है। मैं यहाँ उपस्थित सभी लोगों से यह गुजारिश करता हूँ कि हमारी स्थिति कमजोर होने का कारण यह है कि हम अपने योग्य नेता को नहीं चुनते। हममें से कुछ स्वार्थी लोग मीठा बोलकर अपने समाज के लोगों को फँसाते हैं। पशु-पक्षी भी अपनी जाति का ही नेता चुनते हैं। गाय-भैंसो का नेता धनगर होता है। इसी कारण उन्हें बूचड़खाने जाना पड़ता है, जो खुद क्षत्रियों को भी शूद्र मानते हैं, मानव को गाय के गोबर और मानव मल मूत्र से भी बदतर समझते हैं। स्पर्श हुआ तो गोबर से नहा कर शुद्ध होते हैं, ऐसे लोग हमारे नेता कैसे हो सकते हैं?

भारत के अतिरिक्त किसी भी देश में जाति व्यवस्था नहीं पाई जाती। किसी को भी जाति के नाम पर पढ़ने-लिखने से नहीं रोका जाता। परंतु यहाँ जातिभेद इतना तीव्र है कि कुत्ते-बिल्ली के मल-मूत्र से भी बुरा बर्ताव हम अपने जैसे भाई-

बहनों से करते हैं और यह अंग्रेजों ने नहीं किया था। यह हमारे स्वदेशी पुरोहितों की जमाने बना रखा था। देश की बहुसंख्यक आबादी को सामाजिक, सांस्कृतिक और मानसिक रूप से पंगु बनाकर रखने के लिए भी वर्ण व्यवस्था में कानून बनाकर उन्हें शिक्षा से दूर रखा गया था। मैं डॉ. अम्बेडकर की विद्वता और समाज तथा देश के प्रति समर्पण की खुले दिल से प्रशंसा करता हूँ हम उन्हें पंडित की उपाधि देते हैं और अपना नेता घोषित करते हैं। उन्हें बहुत से प्रलोभन दिए गए कि वह आपका साथ छोड़कर पुरोहितों से मिल जाएँ और पूरे ऐशो-आराम के साथ जीवन जिएँ। परंतु मैं आभार मानता हूँ कि इतनी कमजोर स्थिति होने के बाद भी डॉ. अम्बेडकर हमारे साथ हैं। मैं अनुरोध करता हूँ कि डॉ. अम्बेडकर मेरे राजपूतवाड़ी सोनतली कैम्प पर मेरे साथ भोजन ग्रहण करने की कृपा करें। इस प्रकार पवित्र कोल्हापुर के माणगाँव परिषद में हजारों अस्पृष्यों के समक्ष डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्व की नींव रखी गई शाहूजी महाराज की जय, अम्बेडकरजी की जय... के जयघोष से माणगाँव का आकाश गूँज गया। यहीं से डॉ. अम्बेडकर के राजनैतिक जीवन की शुरुआत होती है।

इस आयोजन के लगभग एक माह के बाद 16 अप्रैल, 1920 को नासिक में अस्पृश्य छात्रावास के भवन का शिलान्यास करते समय उन्होंने कहा कि

'सामाजिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं है। अस्पृश्य भाइयों को कथित ऊँचे लोगों से घृणित व्यवहार मिलता है, इससे साफ मालूम होता है कि जातिभेद का स्वरूप कितना घिनौना और मजबूत है। धर्म का इतना अपमान और वह भी भगवान के नाम पर इस तरह का क्रूर कृत्य कि मानव को कुत्ते-बिल्ली से भी घृणित मानने का कानून बना दिया जाए, विश्व में कहीं नहीं है। यह देश और हमारी सभ्यता के लिए शर्मनाक है। प्राचीनकाल में ऐसा नहीं था। इस घृणित व्यवस्था की शुरुआत मध्य काल से हुई। इसका सबूत हमें नासिक से ही मिलता है जहाँ नदी में स्नान करने के अलग-अलग कुंड मिलते हैं। इनमें महारों का भी अलग से कुंड है। कोल्हापुर की सत्ता जब हमारे हाथ में आई, उस समय चारों तरफ और राज्य की शासन व्यवस्था में केवल एक ही वर्ग ब्राह्मण समाज के लोगों का बोलबाला था। सरकारी कार्यालयों में गैर ब्राह्मणों का कोई कर्मचारी था ही नहीं। अतः राजकीय सेवाओं में सभी नागरिकों को समान हिस्सेदारी देने के लिए विशेष आरक्षण की व्यवस्था की गई। कुछ जानकार लोगों को कचहरी में वकील बनाया गया। मराठा और अस्पृश्यों के बीच खाई इतनी गहरी थी कि उनकी शिक्षा के लिए पृथक छात्रावास की व्यवस्था की गई। इन वर्गों के छात्रों के लिए विशेष छात्रवृत्ति की व्यवस्था की गई। इन छात्रों की शिक्षा शुल्क

माफ किया गया। अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की गई। अस्पृश्य जातियों के लोग जो जानकार थे, पढ़-लिख गए थे, को राजकीय सेवा में जगह दी गई। 24 साल के मेरे इस कार्य का प्रतिफल अब कुछ दिखाई पड़ना शुरू हो गया है। लेकिन इस समाज की स्थिति अभी केवल छोटे बच्चे जैसी ही है, यह अभी भी केवल पैरों के बल चलना ही सीख पाया है। जो समाज सदियों से कानून बना कर शिक्षा से दूर रखा गया हो उसको आगे बढ़ने में समय तो लगना ही है। अतः मैंने इस समाज के उत्थान को अपना लक्ष्य बनाया है। लेकिन मेरा यह काम पूना के ब्राह्मण पत्रों को बहुत बुरा लगता है। समर्थन करना तो दूर वे मेरे हर कार्य का विरोध करते हैं। जब वह कोई गलती नहीं निकाल पाते तो मुझे ब्राह्मणों को चिढ़ाने वाला और नीचा दिखाने वाला बताते हैं। यह उनकी पुरानी आदत हैं। इन सबके मूल में जातिभेद है। जातिभेद को समाप्त किए बिना स्व शासन का मतलब होगा ब्राह्मण शासन = वर्ण व्यवस्था का शसन = मनुस्मृति का शासन। जिसमें मराठों को पढ़ने-लिखने का अधिकार ही नहीं हैं ऐसा स्व शासन किस काम का? अर्थात जाति भेद को समाप्त कर समाज व्यवस्था को मजबूत किए बगैर यदि स्व शासन दिया भी जाय तो हमें नहीं चाहिए।

महाराष्ट्र के उच्चवर्गीय नेताओं को दलित दमित और पिछड़े समाज की दशा पर कभी-कभी कुछ दया आ जाती है, और वह बड़ी अच्छी बातें बोलने लगते हैं। परंतु जब उसे करने का समय आता है तो वह सब कोई न कोई बहाना बना कर निकल जाते हैं। ऐसे नेताओं से पिछड़े और अस्पृश्य समाज को बच कर रहना चाहिए।'

यदि आजादी मिल जाती है तो अस्पृश्यों के साथ सहभोजन करने को हम तैयार हैं। ऐसी गर्जना महाराष्ट्र के ब्राह्मण नेता बाल गंगाधर तिलक ने निपानी गाँव में बोलते हुए की। यदि अस्पृश्य अपने भाई हैं तो सहभोजन जैसी छोटी सी बात को आजादी से जोड़ने का क्या मतलब? इसके साफ मालूम होता है कि यह बंधुभाव केवल दिखावे के लिए हैं इनके दिखाने के दांत अलग है और खाने के दाँत अलग है। इन पर कतई विश्वास मत करो। अपनी उन्नति के लिए केवल अपनी जाति से ही ईमानदार नेता को चुनो। अपनी जाति में यदि कोई नेता बेईमान हैं तो उसे कतई बर्दाश्त मत करो। उसे अपमानित कर समाज से बाहर करो।

मैंने अपने राज्य में पिछड़ों और अस्पृश्यों की उन्नति के लिए जो कुछ उपाय किए हैं उससे ब्राह्मण समाज मुझ पर नाराज है। जिस तरह से माता-पिता अपने निरोगी और सशक्त बच्चों से अधिक देखभाल अपने कमजोर और बीमार बच्चों की करते हैं और कमजोर बच्चों की शिक्षा-दवा आदि का विशेष प्रबंध करते हैं,

वैसे ही मैंने अपने पिछड़े और अस्पृश्य भाइयों की उन्नति के लिए विशेष प्रबंध किए हैं। ब्राह्मण समाज के लोग केवल दिखाने के लिए ही अछूतों के उद्धार की बात करते हैं। इनकी मधुर और मोहक गप्पबाजी ने इनका स्वरूप सबके सामने उजागर कर दिया है। अछूतों और पिछड़ों को अपना कल्याण करने के लिए स्वयं आगे आना चाहिए और अपने में से योग्य नेता का चुनाव करना चाहिए, और इसके लिए शिक्षा और विशेष रूप से सामाजिक शिक्षा के बिना कोई विकल्प नहीं हैं।'

महाराज का नासिक में दिया गया यह भाषण देश ही नहीं, विदेशों तक फैल गया। 17 अप्रैल, 1920 के *टाइम्स ऑफ इंडिया* ने शाहूजी महाराज के भाषण की तारीफ की और इसी कालजयी बताया। मद्रास के *जस्टिस* पत्र में महाराज का भाषण अंग्रेजी में छपा। महाराज का यह भाषण कई देशी भाषाओं में अनूदित हुआ और प्रकाशित हुआ। 28 अप्रैल, 1920 को राम राय निंगा शाहू महाराज को लिखते हैं, 'आपका यह भाषण युग प्रवर्तक है। आपने उचित समय पर उचित आवाज उठाई है। लोकाभिमुख और विचारचान महाराजा के यह उद्धार और प्रयास अवश्य ही लोक जीवन में आमूल क्रांतिलावेंगे, इसमें संदेह नहीं है।' उनके भाषण की सराहना करते हुए बोस्टन और कैलिफोर्निया के वृत्त पत्रों ने उन्हें शुद्ध समाज सुधारक बताया था। पूना के समाचार पत्रों ने शाहूजी महाराज के भाषण का खुल कर विरोध किया। समर्थन करना तो दूर की बात रही, उन्होंने विरोध किया।

3. नागपुर परिषद

30 मई, 1920 को नागपुर में अखिल भारतीय बहिष्कृत परिषद का आयोजन किया गया था। **नागपुर** की इस परिषद की अध्यक्षता करने के लिए इसके आयोजक मंडल जिसमें गणेश अक्काजी गवई, केशवराव खंडारे, बाबू कालीचरण नंदा शामिल थे, शाहूजी महाराज के पास गए। इस आशय और उम्मीद के साथ कि महाराज की अध्यक्षता करने से आयोजन का उच्चीकरण अपने आप हो जाएगा। इनका अनुरोध सुनकर शाहूजी महाराज ने मजाक में और इनका मन जानने के लिए कहा- 'बाल गंगाधर तिलक आप सबकी बड़ी तारीफ करते हैं आप उन्हें क्यों नहीं अध्यक्षता के लिए बुलाते हैं। वह तो आपकी परिषद के लिए बहुत प्रसन्न होंगे। इस पर श्री गवई बोले, महाराज, तिलक की बात छोड़ दीजिए। स्वयं भगवान राजा रामचंद्र इस परिषद में यदि आना चाहेंगे तो भी हम उन्हें नहीं आने देंगे। अध्यक्षता की बात तो बहुत दूर है। इनका हमारे विकास नहीं विनाश में योगदान रहा है। साफ बोलने के लिए माफी चाहता हूँ इसलिए हम आपके पास

आए हैं।'

यह सुनकर महाराज का गला भर आया। उनकी आँखों से आँसू निकल आए। उन्होंने रूँधे हुए गले से कहा, 'चाहे मेरा राज्य मुझसे छीन लिया जाए तो भी मैं आप सबके लिए जो भी बन पड़ेगा करूँगा।' नागपुर परिषद में हजार बाधाएँ आने वाली हैं। इसका अंदाजा महाराज को हो गया था। महाराज को इन बाधाओं का अच्छा-खासा अनुभव भी था। इस आयोजन के पहले कुलकर्णी परिषद ने बहुत सारे बेबुनियाद आरोप लगाकर उनके चरित्रहनन का प्रयास भी किया था। अपनी रैयत एसोसिएशन की सभा में उनके अध्यक्ष दत्तोपंत बेलवी ने खुले आम यह आरोप लगाया कि कोल्हापुर राज्य में किसी की औरत और जीवन सुरक्षित नहीं है। तिलक के *केसरी* ने यह लिखा- 'कोल्हापुर में किसी का जीवन और इज्जत सुरक्षित नहीं है।' कोल्हापुर के रीजेंट मेजर वुडहाइस ने सलाह दी कि महाराज को अपने राज्य से बाहर सभा नहीं करनी चाहिए। पूरा ब्राह्मण समाज उनके नागपुर जाने के विरुद्ध था। जब यह जानकारी हुई कि बहिष्कृत परिषद की अध्यक्षता शाहूजी महाराज ने स्वीकार कर ली है तो विरोधी और ब्राह्मण समाज के लोगों ने धमकी भरे पत्र भेजने शुरू कर दिए कि शाहूजी महाराज नागपुर न जाएँ। यदि शाहूजी महाराज नागपुर में आते हैं तो काले झंडों से स्वागत किया जाएगा। दूसरा कोई होता तो पीछे हट जाता परंतु इससे महाराज कहाँ मानने वाले थे। उन्हें इतना विरोध झेलने और ऐसे माहौल में कार्य करने में आनंद आता था। अपनी यात्रा योजना के अनुसार शाहूजी महाराज नागपुर रेलवे स्टेशन पर नियत समय पर उतरे। ***उनके स्वागत के लिए भारी संख्या में समाज के लोग उपस्थित थे। परंतु नागपुर राज्य के महाराजा रघुजी भोंसले जो कि शाहूजी महाराज के सम्बंधी थे, ब्राह्मण समाज को नाराज करने का साहस नहीं कर सके। अतः शाहूजी महाराज नागपुर के राजमहल में न रुक कर ईसाई मिशनरी के बंगले में रहे। ऐसा अक्सर होता है कि हमारे सम्बंधी ही हमारा साथ नहीं देते। ब्राह्मण समाज का संगठन उस समय भी इतना सशक्त था कि उसे जरा भी विरोध बर्दाश्त नहीं था। उसे यह कतई बर्दाश्त नहीं था कि उसका नौकर किसी और के यहाँ से भी कुछ कमा ले। वह केवल उतना ही करे जितना वह कहे। इस तरह का संगठन कि नागपुर के शासक रघुजी भोंसले की हिम्मत नहीं पड़ी कि वह महाराज को अपना राजकीय अतिथि बना सकें। यह स्थिति थी राजा और उनके पुरोहित समाज की। राजा तो केवल नाम मात्र का राजा होता था वास्तविक सत्ता तो पुरोहित समाज के हाथ में थी और आज भी है।*** वास्तव में देश के 85 प्रतिशत बहुजन समाज की स्थिति आज भी ब्राह्मणों का धार्मिक

और सांस्कृतिक गुलाम से अधिक की नहीं है। वह केवल उतना ही करता है जितना उसका धार्मिक और सांस्कृतिक मुखिया/ मालिक निर्देश करता है।

फिर भी नागपुर शहर ने शाहूजी महाराज का भव्य स्वागत किया। समाज के लगभग हर तबके ने महाराज का स्वागत अपने हिसाब से किया। यह आज से सौ साल पहले का समय था। सरदार व्यंकट राव गुर्जर ने महाराज के स्वागत जुलूस के लिए हाथी, ऊँट, ढोल, तासे आदि भेजे, खान बहादुर मलिक साहब ने अपना व्यक्तिगत सुन्दर रथ भेजा। पूरे शहर में सजावट की गई थी। गरीब जनता में मानो उमंग की लहरें उठ रही थीं। नागपुर के सभी लोग इससे ही अभिभूत थे कि कोल्हापुर के महाराज हमारी परिषद की अध्यक्षता करने हमारे शहर पधारे हैं। रास्ते भर शाहूजी महाराज की जय-जयकार होती रही। उनके इस शाही जुलूस में आमजन की भीड़ देखकर विरोधी खेमे में मातम-सा छा गया। फिर भी विरोधी पुरोहित समाज के लिए नीचता तो मानो पैदायशी गुण था। जगह-जगह उन्होंने 'डेढ़ों का राजा' के नाम से पोस्टर लगा रखे थे। जुलूस में शामिल लोगों ने इन पोस्टरों को फाड़ कर उसकी होली जलाई। किसी तरह की कोई अप्रिय घटना शहर में न हो इसलिए 'समता सैनिक दल' की टुकड़ियां सारे शहर में फैली हुई थीं। आश्चर्य है! कि अस्पृश्य समाज इतना जागरूक हो गया था 100 साल पहले। शर्म से सिर झुक जाता हैं जब हम इसकी तुलना करते हैं सतीश चन्द्र मिश्र और अपने बहुजन नेताओं से शाहूजी महाराज के पंडाल में आते ही गगन भेदी जयघोष हुआ। बहुत ही उत्साह और शान से स्वागत हुआ। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा-

'अस्पृश्यता मानव समाज के लिए कलंक है। किसी को भी बिना अपराध किए ही समाज से बहिष्कृत कर देना, अपराधी और बेईमान समाज का द्योतक है। आप लोग उनसे अधिक बुद्धिमान, अधिक ताकतवर, अधिक त्यागी और देश सेवी हैं जो आपसे अस्पृश्यता का व्यवहार करते हैं। आप देश के एक महत्वपूर्ण घटक हैं। मैं आपको बुद्धि-पराक्रम में किसी प्रकार ब्राह्मण समाज से कम नहीं समझता। हम सब आपस में भाई हैं। हमारे हक, अधिकार और कर्तव्य बराबरी के हैं। इसी को आधार मानकर हमें काम करना है। मेरे घर-परिवार के लोगों को अपना निर्णय स्वयं लेने की स्वतंत्रता है। जिन्हें मेरी बात ठीक लगती है उन्हें मेरा पूरा समर्थन रहता है। जिन्हें अच्छी नहीं लगती उनका विरोध या दंड नहीं दिया जाता। हम सब भारतीय है। भारतीय प्रजाजन किसी भी वर्ण जाति के हों, उनसे राज्य कोई भेदभाव नहीं करेगा। व्यक्ति की दृष्टि में धर्म एक महत्वपूर्ण बात है परंतु उससे राष्ट्र को कोई लेना-देना नहीं हैं। राष्ट्र की निगाह में सभी नागरिक

बराबर हैं, चाहे वे किसी भी जाति धर्म के हों। जनता में ईश्वर की खोज करना, अपने देश भाइयों और इनमें जो सबसे अधिक दबे-कुचले हैं, पिछड़े हैं उनकी विशेष देखभाल करना ही सच्चा धर्म है। जहाँ तक मैं समझता हूँ सभी धर्म यही कहते हैं। इसके स्थान पर धर्म और ईश्वर के नाम पर मानव-मानव में भेद करना, अपने आपको सर्वश्रेष्ठ बताते हुए अपने ही समान एक समूह को बिना कोई अपराध किए ईश्वर के नाम पर कठोर दंड देना धर्म नही धूर्तता है और मानवता के प्रति ऐसा अपराध है जिसका कोई दूसरा उदाहरण विश्व में नहीं है। वह भी बाकायदा कानून बनाकर, नियम बना कर, ग्रंथों की रचना कर और सम्पूर्ण संस्कृति को मानवता के विनाश की ओर धकेल देना एक संगठित और सांस्कृतिक अपराध है। इन्हीं ग्रंथों के आधार पर वह अपने भाइयों पर ही अमानुषिक अत्याचार करते हैं। मानवता का इससे अधिक विनाश पूरे विश्व में कहीं नहीं हुआ है। इन ग्रंथों के आधार पर हम चाहे जितने कथा, भागवत, पूजा पाठ, तीर्थ आदि करते रहें, हमेशा ईश्वर के आगे हाथ जोड़े बैठे रहे। इससे ईश्वर कतई खुश नहीं होते।

ब्रिटिश सरकार का हमारे देश पर बहुत उपकार है, विशेष रूप से अस्पृश्य समाज के ऊपर। उन्होंने केवल एक वर्ग ब्राह्मणों की श्रेष्ठता का कानून समाप्त कर सभी को समान हक दिलाया है। इससे पहले ब्राह्मण समाज और कुछ मजबूत समाजों को कानून में साफ-साफ विशेषाधिकार प्राप्त थे। जघन्य से जघन्य अपराध सिद्ध होने पर भी उन्हें कोई दण्ड न देकर उन्हें परमेश्वर का अवतार माना जाता था। बाकी सब जाति के लोग पैदायशी तुच्छ थे। समाज का एक हिस्सा जिसे अस्पृश्य कहा जाता यहाँ कानून में उनकी स्थिति कुत्ते-बिल्ली से अधिक नहीं मानी गई थी। उन्हें ब्राह्मण और क्षत्रियों की सेवा करने के लिए ही बनाया गया था। शूद्रों को धन रखने का अधिकार ही नहीं दिया गया था। हत्या जैसे गम्भीर प्रकरणों में भी ब्राह्मणों को मात्र देश निकाला ही दिया जा सकता था। उनके लिए इससे अधिक दंड का विधान ही नहीं था या तो कहें कि उन्हें अत्याचार करने की खुली छूट थी। इस तरह का कानून मनु ने बना रखा था, जिसे अंग्रेजों ने कानून बनाकर समाप्त किया।

स्वतंत्रता, समता, न्याय, बंधुता और बुद्धि प्रमाण या विज्ञान पर आधारित धर्म ही सच्चा धर्म है। अन्यथा धर्म के आधार पर सब ढोंग है। ऐसा आपके समाज के सबसे विद्वान नेता डॉ. भीम राव अम्बेडकर का कहना है। भीम राव अम्बेडकर आज की तारीख में देश के सबसे बड़े विद्वान हैं। यह हमारा सौभाग्य है कि हमें भीम राव जैसा नेता प्राप्त हुआ। हम सभी को उनका अनुसरण करना चाहिए।

इस देश की उन्नति इस बात और समय पर निर्भर करती है कि कितनी शीघ्रता या विलम्ब से जाति व्यवस्था समाप्त की जाती है। जातिभेद निर्मूलन के लिए रोटी बेटी का सम्बंध आवश्यक है। इसके लिए अंतर्जातीय विवाह बहुत आवश्यक है। पुराने कानून अंतर्जातीय विवाह की मान्यता नहीं देते। इसके लिए नए कानून की आवश्यकता है। नम्बरदार मि. पटेल ने इस तरह एक कानून बनाने का सवाल काउंसिल में उठाया था। ऐसा कानून बहुत आवश्यक है। ऐसा करने से ब्राह्मणों का महत्व कम होगा और समाज में बराबरी आएगी। इसीलिए समाचार पत्रों ने इस बिल का कड़ा विरोध किया था। जो बातें प्रकाशित होती हैं, वही समाज और देश के सामने आती हैं। ब्राह्मण समाज के लोग सीधे सीधे यह कहते हैं कि वे पूरे समाज के नेता हैं और उन्हें हमसे हमदर्दी है। लेकिन जब काम करने की बात आती है तो वह अपने देश भाइयों का ही विरोध करते हैं और ऐसा विरोध कि अपने देश भाइयों के लिए मैं स्कूल खोलता हूँ तो वे मेरा विरोध करते हैं। यहाँ तक कि समाचार पत्रों के माध्यम से अपशब्द तक कहे जाते हैं, फिर भी मैं समाज के कमजोर वर्गों के लिए काम करता हूँ। इन मतलबी लोगों की बातें कहाँ तक सच हैं यह आप लोगों पर छोड़ता हूँ।

मैं आपकी सभा का अध्यक्ष बन गया हूँ, आपका पक्ष लेता हूँ। इसलिए भी ब्राह्मण समाज के लोग मेरी भर्त्सना करते हैं। लोगों के बीच मेरी बुराई करते हैं। परंतु उनके इस कृत्य से मुझे और भी उत्साह मिलता है। जो समाचार पत्र मेरी भर्त्सना करते हैं, मैं उनका भी अभिनंदन करता हूँ और अपने काम में लगा रहता हूँ। मेरी ओर से आप लोग कोई शंका मत रखें। मेरे प्रिय मित्र निंबालकर, दत्तोबा पेंटर, बाबू राव जाधव, कदम, बेलगाँव के पाटिल आप लोगों को जब मेरी जरूरत लगे निःसंकोच बताना आपका अनुरोध मेरे लिए आदेश है। मैं अब कमजोर हो रहा हूँ। मेरे स्थान पर मेरा बेटा अब कार्यभार सम्भालने लायक हो गया है। मुझे यदि समय मिला तो अवश्य ही यह राजपद छोड़कर मैं आपके साथ समाजसेवा में शामिल हो जाऊँगा। आप मेरी सेवा स्वीकार करेंगे इसका मुझे विश्वास है। इज़्ज़त-आबरू और पढ़ने-लिखने की बात तो बहुत दूर है हमारा जन्म ही ब्राह्मणों की गुलामी करने और मार खाने के लिए हुआ है ऐसा धर्म ग्रंथों में लिखा हुआ है और यही यहाँ का कानून है। यही ब्राह्मण समाज के लोग आपका विरोध कर रहे हैं और स्वयं सत्ता पर काबिज होना चाहते हैं। यदि ये लोग सत्ता का काबिज हो गए तो हमारी दशा और खराब हो जाएगी। आपके शासन से हमें पढ़ने लिखने और जीने का अधिकार मिला है। अतः हम आपके माध्यम से महाराजा से अनुरोध करना चाहते हैं कि हमारे शासन सूत्र अपने ही

हाथ में रखें ब्राह्मणों के हाथ में न दें। कांग्रेस और ब्राह्मण हमारे नेता नहीं है। हमारा पक्ष हमारी जाति के नेता से ही सुनकर हमारे बारे में निर्णय लिया जाए।'

दुभाषिए के माध्यम से उन्होंने सारी बात सुनी तो वह स्तब्ध रह गए। मानवता का इतना बड़ा विनाश वह भी कानून बनाकर उन्होंने कहीं नहीं देखा या सुना था। उन्होंने आश्वासन दिया किया वह अवश्य ही उनकी बात महारानी तक पहुँचाएँगे।

इसी क्रम में आगे 16 फरवरी 1922 को अखिल भारतीय बहिष्कृत परिषद का आयोजन किया गया था। इस आयोजन में अध्यक्षीय उद्बोधन करते हुए शाहूजी महाराज ने कहा, 'वास्तव में इस आयोजन में अध्यक्ष पद का अधिकार भीमराव अम्बेडकर का है। आपके ही रक्त से बने हुए यह आपके समाज के ही ऐसे आदमी हैं जो पूरी तरह आपके साथ हैं। यह मुझसे ज्यादा या यों कहें आज की तारीख में सबसे अधिक पढ़े-लिखे आदमी हैं। इस समय वह अपनी पढ़ाई पूरी करने के लिए विलायत गए हुए हैं, इसी कारण वह इस परिषद में शामिल नहीं हो सके हैं। वह जहाँ भी होंगे इसी में लगे होंगे कि किस तरह अपने देश भाइयों का कल्याण किया जा सके। आप इतनी विपन्न अवस्था में होते हुए भी देश के कोने-कोने से चलकर यहाँ आए हैं। आपने सम्राट जार्ज पंचम के युवराज का स्वागत सम्मान किया है। आपको इसके लिए धन्यवाद। उनके माध्यम से अपनी बात शीर्ष सत्ता तक पहुँचाने का जो मार्ग आपने अख्तियार किया है, वह उत्तम है। इस सम्बंध में आपकी जितनी तारीफ की जाए वह कम है। आप सबमें स्वत्व की पहचान मुझे दिख रही है। इस नई अस्मिता के आधार पर आप लोगों ने संघर्ष कर आत्मविश्वास का जो बिगुल बजाया है उसे आगे बढ़ाते रहें और कितनी भी बाधाएँ आएँ आप लोग रुकना मत, तभी हम लोग अपने उद्देश्य में सफल होंगे और सामाजिक अधिकारों को पा सकेंगे।

'पुरखों के व्यवसाय से लिपटे मत रहो, यह मेरा आपसे हाथ जोड़कर अनुरोध है। कड़े से कड़ा परिश्रम करो, अपनी भूख को काबू में रखो, कुछ भी करो, बच्चों को अवश्य पढ़ाओ, उनकी पढ़ाई में कोई बाधा न आने दो। खेती छोड़ कर कोई और व्यवसाय करो, लश्कर में भर्ती हो जाओ, सरकारी दफ़्तरों में नौकरी पकड़ो, अपनी मेहनत से उन्नति करो।

मेरा एक छोटा सा राज्य है, लेकिन वहाँ पर सरकारी दफ़्तरों में पिछड़ों और दलितों को 50 प्रतिशत पदों पर आरक्षण दिया गया है। एक अस्पृश्य भाई को म्यूनिसिपल कमेटी का चेयरमैन बनाया गया है। अपने मुँह से बड़ाई नहीं है सत्य कह रहा हूँ। आपको अवसर मिला तो आप ऊँचे से ऊँचे पद पर पहुँच सकते हैं। अभी अपने समाज को नया आकार प्राप्त हो रहा है अभी हमारा समाज चलना

सीख रहा है। हिंदू रीति के विपरीत सभी को समान अधिकार और मौका देना ब्रिटिश सरकार का सिद्धांत है उसी के कारण आपको बोलने की आजादी मिली हुई है। भीम राव अम्बेडकर आपके महान नेता है, उनका अनुसरण करो, उनके जैसा बनाने का प्रयास करो। मैंने तो अपना जीवन मानवता को समर्पित कर दिया आप भीम राव अम्बेडकर के बताए हुए मार्ग पर चलो आपसे यही इतना अनुरोध है। (श्याम थेड़कर - *राजर्षि शाहू छत्रपति यांची भाषण,* पृ. 79 -81, *राजर्षि शाहू राजा व माणूस,* पृ. 407 - 410)

परिषद सम्पन्न होने पर महाराज शाहू गणेश अक्काजी गवई से बोले, 'आपको जो चाहे खुले दिल से माँग लो, ऐसा अवसर बार-बार नहीं आता है। मेरे बाद आपकी मदद को कोई हाथ इस तरह अपने आप सामने करने वाला मिलेगा नहीं।' इस पर गवई ने हाथ जोड़ कर कहा, 'महाराज, जब हमारे भगवान के रूप में आप स्वयं हमारे साथ हो तो आप के होते हुए हमें किस चीज की जरूरत हो सकती है जिसे माँगा जाए।'

इस तरह दिल्ली परिषद सम्पन्न हुई। इसी परिषद के पहले युवराज से भेंट का ही प्रभाव था कि अछूतों की समस्या अंग्रेज सरकार के सामने आई फिर भी जैसा कि हम देखते हैं कि साइमन कमीशन के सामने गाँधी एंड पार्टी ने किस तरह धोखा कर यह साबित कर दिया कि भारत में कोई भेदभाव या अस्पृश्यता है ही नहीं।

यहाँ से लौटने के बाद महाराज बड़ौदा नरेश की पुत्री के विवाह में शामिल होने और वहाँ से वापस आने पर मुम्बई में ही 22 मई को मात्र 48 वर्ष की आयु में ही उनका देहांत हो जाता है। इतिहास गवाह है। पूना पैक्ट के समय दो वोटों और पृथक निर्वाचक मंडल का अधिकार छोड़ने के लिए कितना दबाव पड़ा था बाबा साहब के ऊपर, और बाबा साहब उस समय अकेले पड़ गए थे। यदि शाहूजी महाराज उस समय जीवित रहते तो कदाचित वर्तमान भांड प्रतिनिधित्व की व्यवस्था लागू नहीं हो पाती।

शाहूजी महाराज के पूर्वज और कोल्हापुर

शाहूजी महाराज के नाम से जुड़े होने के कारण भारतीय इतिहास में कोल्हापुर रियासत विशेष महत्व रखती है। छत्रपति शिवाजी ने जिस राजवंश की नींव रखी थी, कोल्हापुर रियासत उसी का एक हिस्सा है। यह हमारे लिए गर्व की बात है कि हमारे बहुसंख्यक समाज में महाराष्ट्र में एक ही राज परिवार में दो ऐसे महापुरुषों ने जन्म लिया, जिन्होंने भारतीय इतिहास की दिशा और दशा बदल दी साथ ही इतिहास को नया आयाम भी दिया। लेकिन दोनों ही शासकों को वर्ण व्यवस्था की भट्ठी से निकले पुरोहित समाज ने कभी भी स्वीकार नहीं किया। छत्रपति शिवाजी महाराज ने सर्व शक्तिशाली मुगल शासक औरंगजेब को नाकों चने चबवा दिए। वह उनके द्वारा खड़े किए गए साम्राज्य को दबोचने का लगातार 27 साल तक प्रयास करता रहा। अंततः मुगल शासक की मृत्यु भी दक्षिण में ही हो गई, लेकिन वह मराठों को नियंत्रित नहीं कर सका। वहीं, दूसरी ओर, इस मिट्टी में जन्मे शाहूजी महाराज ने सदियों से दमित-शोषित मानवता को मानव जीवन जीने का अधिकार दिलाया। यह शाहूजी महाराज के द्वारा डाली गई नींव ही है जहाँ से महापुरुषों की वह श्रृंखला उत्पन्न हुई, जिसके परिणामस्वरूप आज हमारा देश मनुवाद की अमानवीय गुलामी से मुक्त हो सका अन्यथा देश के बहुसंख्यक समाज की स्थिति गुलामों से भी बदतर थी।

सत्रहवीं सदी में छत्रपति शिवाजी महाराज के मराठी राजसत्ता की स्थापना के बाद से लेकर बीसवीं सदी तक इसमें बहुत उतार-चढ़ाव आए। छत्रपति शिवाजी महाराज के बाद इस राजवंश में एक ऐसा भी समय आया, जब पेशवा अर्थात सचिव या मंत्री इतने शक्तिशाली हो गए कि उन्होंने सत्ता पर पूरा कब्जा कर लिया और *मनुस्मृति* को इतनी सख्ती से लागू किया कि अस्पृश्यता की पराकाष्ठा मराठा राज्य, विशेष रूप से पूना में हमें दिखाई पड़ती है। यद्यपि यही स्थिति पूरे देश की थी लेकिन यह स्थिति इसी कारण सामने आई कि शाहूजी महाराज ने इसका विरोध किया और मानवता का शासन स्थापित किया। मराठा राजसत्ता पर अधिकार करने के लिए या उसको बनाए रखने के लिए तत्समय पुरोहित पेशवाओं

के द्वारा कई घिनौने हथकंडे और षड्यंत्र अपनाए जाते रहे। मराठों के आपसी टकराव का लाभ राज्य के सचिव अर्थात पूना के नाना साहब पेशवा उठाते रहे। पेशवा नाना साहब ने अपने षड्यंत्रों से मराठा साम्राज्य पर प्रशासनिक और मानसिक कब्जा कर लिया जिसके चलते सम्पूर्ण साम्राज्य में भेदभाव, ऊँच-नीच, अनाचार से सम्बंधित *मनुस्मृति* का ही वास्तविक शासन व्याप्त हो गया था। पेशवाशाही की स्थिति यह थी कि उसने राजा को ही शूद्र घोषित कर दिया था। पूना शहर उस समय मराठा साम्राज्य के शक्ति केंद्र के रूप में स्थापित हो गया था। पेशवाओं के षड्यंत्रों से मराठा राजवंश की यह स्थिति हो गई थी कि शाहूजी महाराज के पहले 50 वर्षों तक कोई भी छत्रपति 20 वर्ष की उम्र भी नहीं पूरा कर पाया। इस तरह से कोल्हापुर का राजमहल विधवा रानियों का आगार बनकर रह गया था।

यहाँ की रियासत कागल के जागीरदार आबा साहब घाटगे मुम्बई के गवर्नर और ब्रिटिश रेजिडेंट तथा ब्रिटिश अधिकारियों के बड़े अच्छे मित्रवत सम्बंध से थे। उन्हीं के अच्छे मित्र स्टुअर्ट मिटफ्रेंड फ्रेजर भी थे जो आगे चलकर शाहूजी महाराज के गुरु और सलाहकार बने। यहाँ तक कि अंग्रेजों के हस्तक्षेप से ही मराठा राजवंश की संरक्षा हो सकी। इस समय के इतिहास से यह स्पष्ट होता है कि उस समय यदि अंग्रेजी शासन नहीं होता तो सम्भवतः शाहूजी महाराज सत्ता में आ ही न पाते। मराठा राजवंश में आपसी झगड़े इतने बढ़ गए थे कि पूरा राजमहल षड्यंत्रों का अखाड़ा बन चुका था। ऐसे में कोल्हापुर में वर्ष 1871 में एक नई घटना घटी। मुम्बई की अंग्रेज सरकार ने महादेव बासुदेव बर्वे नामक ब्राह्मण अधिकारी की नियुक्ति प्रशासक के रूप में कोल्हापुर में कर दी। महादेव वासुदेव बर्वे का व्यवहार इस तरह था मानो ब्राह्मण सत्ता की अनियंत्रित स्थापना के लिए ही उसे भेजा गया हो। बर्वे ने हर जगह केवल ब्राह्मणों की ही नियुक्ति कर केवल षड्यंत्र करने और *मनुस्मृति* की कठोरता बढ़ाने का ही कार्य किया। उसके इस व्यवहार से राज परिवार में काफी असंतोष पैदा हुआ। ब्राह्मण प्रशासक बर्वे ने अपनी सोची-समझी साजिश के तहत राजा शिवाजी चौथे को पागल करार देकर राज्य से बाहर भेजने की योजना बनाई ताकि प्रशासन पर पूर्ण नियंत्रण किया जा सके। उसके इस प्रस्ताव की सहमति भी ब्रिटिश सरकार से मिल गई। लेकिन रानी संकवार बाई और कागल के आबा साहब घाटगे ने इसका विरोध किया। आबा साहब जय सिंह राव घाटगे उस समय कागल के जागीरदार थे। वह भी बर्वे के इस षड्यंत्र से दुःखी थे। आबा साहब घाटगे उस समय राज परिवार के काफी नज़दीक थे। उन्हें यह स्वीकार नहीं था कि बर्वे इस तरह की कार्यवाही

करें। उन्होंने और रानी सकवार बाई ने ब्रिटिश सरकार को पत्र लिखकर बर्वे को हटाने की माँग, जिसे एक मुकदमे की सुनवाई कर ब्रिटिश सरकार ने मान लिया और बर्वे को वहाँ से हटाकर आबा साहब घाटगे को राज प्रतिनिधि बना दिया गया। यहीं से उस इतिहास की शुरुआत होती है, जिसने देश के इतिहास को एक नया आयाम दिया और देश के बहुसंख्यक समाज को जीने की नई राह मिली। लम्बी और गम्भीर मानसिक बीमारी के चलते 25 दिसम्बर, 1883 को शिवाजी महाराज चतुर्थ की मृत्यु हो गई। शिवाजी की मृत्यु के बाद अप्रत्यक्ष रूप से कोल्हापुर राज्य की सत्ता आबा साहब घाटगे के हाथ में आ गई। चूँकि आबा साहब घाटगे कागल के जागीरदार थे और राज परिवार से सम्बंधित थे। अतः उनके आने से राज परिवार को काफी शांति मिली। शिवाजी चतुर्थ की मृत्यु के बाद ब्रिटिश सरकार की सहमति से आबा साहब घाटगे के पुत्र यशवंतराव को महारानी आनंदीबाई ने दत्तक गोद लेने का निर्णय लिया। यही बालक यशवंत राव आगे चलकर शाहूजी महाराज के नाम से विख्यात हुए।

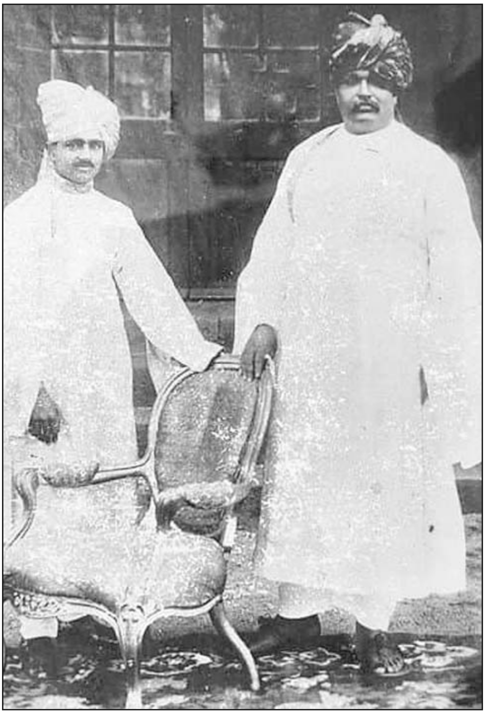

शाहूजी महाराज

जन्म एवं बचपन

शाहूजी महाराज के बचपन का नाम यशवंतराव था। कोल्हापुर के राजमहल में 26 जून, 1874 को उनका जन्म हुआ था। उनके पिता आबा साहब घाटगे राजपरिवार से जुड़े थे और उस समय कागल रियासत के जागीरदार थे। यशवंत राव की माता का नाम राधाबाई था। यशवंत राव का बचपन कष्टों में ही बीता। वह जब मात्र तीन वर्ष के थे तभी उनकी माता का देहांत हो गया था। फलतः उनके पालन-पोषण के लिए पिता को दूसरा विवाह करना पड़ा। यशवंत राव की माँ के इतनी कम अवस्था में छोड़कर चले जाने से उनके पिता आबा साहब जय सिंह राव घाटगे अत्यंत अवसाद में रहने लगे थे और इसी अवसाद के चलते वह अति मदिरापान के व्यसनी हो गए थे। दूसरे विवाह के उपरांत भी उनकी मदिरापान की लत नहीं छूटी। दूसरी ओर यशवंत राव को विमाता का सौतेला व्यवहार भी झेलना पड़ा। इसी कारण वह अत्यंत गम्भीर स्वभाव के थे। उनसे गरीबों और बच्चों का दुख देखा नहीं जाता था। वह किसी घटना पर तुरंत कोई प्रतिक्रिया नहीं देते थे। घटना के बारे में पूरी जाँच-पड़ताल कर फिर शांतिपूर्वक उसका हल निकालते थे। कोल्हापुर राज परिवार के तत्कालीन वैध शासक शिवाजी चतुर्थ की मृत्यु हो चुकी थी। उस समय उनको कोई संतान नहीं थी, अतः महारानी आनंदी बाई ने आबा साहब घाटगे के पुत्र यशवंतराव को उनके गम्भीर गुणों को ध्यान में रखते हुए गोद लेने का निर्णय किया। इस निर्णय की मंजूरी ब्रिटिश सरकार से प्राप्त हो गई। कोल्हापुर के राज प्रांगण में 17 मार्च, 1884 को विधिवत दत्तक विधान पूर्ण हुआ और यशवंतराव राज्य के शासक बने। दत्तक विधान के समय ही महारानी आनंदी बाई ने उनका नाम शाहूजी छत्रपति रखा। उस समय शाहूजी महाराज की उम्र मात्र 10 साल ही थी। शाहूजी महाराज के राज्यारोहण के बाद उनकी शिक्षा की विशेष व्यवस्था वहाँ के राजनैतिक प्रतिनिधि कर्नल रीव्स के द्वारा सुझाई गई और उसी के अनुसार उन्हें वर्ष 1886 में राजकोट के राजकुमार महाविद्यालय में प्रवेश दिया गया। अपने तीन और साथियों के साथ शाहूजी राजकोट के महाविद्यालय में दाखिल हुए और उनकी शिक्षा प्रारम्भ हुई। इसी बीच

चार महीने भी नहीं हुए थे कि दिनांक 20 मार्च, 1886 को उनके पिता की मृत्यु हो गई। आनन-फानन में शाहूजी कोल्हापुर लौटे। शाहूजी की माता राधाबाई का देहांत पहले ही हो चुका था। तब वह मात्र तीन साल के थे और अब मात्र 12 वर्ष की उम्र में पिता भी नहीं रहे। अब शाहूजी छत्रपति तो थे लेकिन माता-पिता की छत्रछाया ऊपर से उठ चुकी थी। इस प्रकार की विषम परिस्थितियों में शाहूजी महाराज ने वर्ष 1889 में राजकोट महाविद्यालय की शिक्षा पूर्ण की। इसके बाद उनकी शिक्षा धारवाड़ में हुई, जिसके शिक्षा प्रमुख स्टुअर्ट मिटफोर्ट फ्रेजर थे। श्री फ्रेजर नेक दिल और दयालु अफसर थे वह सहायक कलेक्टर और मजिस्ट्रेट का पद संभाल चुके थे। उन्होंने महाराज की शिक्षा के साथ देश के भ्रमण की योजना बनाई, जिससे महाराज को देश की जमीनी हक़ीकत का पता चल सके। चार साल तक शाहूजी महाराज की शिक्षा धारवाड़ में चली। दिनांक 2 अप्रैल, 1894 को ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि लॉर्ड हैरिस ने शासन सूत्र शाहूजी महाराज के हाथों में सौंप कर दिया।

युवावस्था में अपने साथियों के साथ शाहूजी महाराज

पिता का देहांत और संघर्षों की शुरुआत

महापुरुषों का जीवन अपने आपमें हम सबके लिए उदाहरण की तरह होता है। गरीबी और सामाजिक वंचना क्या होती है, यह बाबासाहब से अधिक किसी ने नहीं झेली है। जिनके एक नहीं चार बच्चे, इलाज के अभाव में दम तोड़ देते हैं। फिर भी बाबा साहब नहीं रुके। सीने पर पत्थर रखकर अपने करोड़ों बच्चों के लिए गोलमेज कॉन्फ्रेंस में भाग लेने लंदन चले गए। लेकिन इतिहास में इसे नहीं बताया जाता? यह सरकारी और सांस्कृतिक जातिवाद है।

शाहूजी महाराज की माता का देहांत उस समय ही हो गया था जब वे मात्र तीन वर्ष के थे, अर्थात उन्हें अपनी माँ का चेहरा भी याद नहीं रहा होगा। व्यक्ति के लिए इससे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण और क्या हो सकता है? ऐसी कई घटनाएँ महाराज के जीवन में हुईं, लेकिन महाराज किस मिट्टी के बने थे यह उनका व्यक्तित्व बताता है। मात्र बारह वर्ष ही, आयु में जिस समय हमें ठीक से अपना परिचय देना भी नहीं आता, उनके पिता भी चल बसे। अर्थात, बारह वर्ष की उम्र तक माता-पिता दोनों में से कोई नहीं था उनके पास। उनके आस-पास कौन थे? धूर्त और आपराधिक प्रवृत्ति वाले पुरोहित, सांस्कृतिक और मानसिक हथियारों से आर्थिक, सामाजिक और नैतिक लूट-मार करना, जिनका पुश्तैनी धंधा रहा है। ऐसे में आश्चर्य होता है कि वह इतने शक्तिशाली शासक हुए कि उन्होंने वर्ण व्यवस्था की चूलें हिला दीं और मंदिर जैसे आस्था के केंद्रों पर हावी पुरोहितों की सत्ता को उखाड़ फेंका।

महाराज की माता के देहांत के बाद उनके पिता आबा साहब जयसिंहराव घाटगे अवसाद में रहने लगे थे। उन्होंने दूसरा विवाह किया, लेकिन अवसाद के चलते उनकी मदिरापान की लत नहीं छूटी। मात्र 35 वर्ष की उम्र थी, जब उनका देहांत हुआ। इससे अधिक बड़ा हादसा और क्या हो सकता है? इस समय महाराज मात्र बारह वर्ष के थे और राजकोट के राजकुल विद्यालय में अध्ययन कर रहे थे। यह कहने में कोई संकोच नहीं कि यदि अंग्रेजों जैसी न्यायप्रिय जाति देश में नहीं होती तो शायद हमारे महाराज और उनके जैसी बहुत-सी विभूतियाँ

देश के सामने आने से पहले ही वर्ण व्यवस्था की भट्ठी में भस्म हो चुकी होतीं। आखिर क्या ज़रूरत थी, आचार्य फ्रेजर को, महारानी आनंदी बाई के उत्तराधिकारी और कोल्हापुर की गद्दी के वारिस को पढ़ाने लिखाने की? आधुनिक यूरोपीय शिक्षा दिलाने की? रहने देते वह वैसे ही अन्य शासकों की तरह अपने दुश्मनों को कैद कर? परंतु नहीं, उन्हें शाहूजी महाराज से कोई जातिगत दुश्मनी नहीं थी। जैसी दुश्मनी हिंदू समाज के पुरोधाओं ने अपने समाज के अन्य भाइयों से बना रखी थी कानून बनाकर? अंग्रेज शासकों ने नज़रबंद किया था चीमा साहब को, क्योंकि चीमा साहब जो रिश्ते में महाराज के दादाजी लगते थे, ने 1857 के विद्रोह में विद्रोहियों का साथ दिया था। उस समय शाहूजी महाराज का जन्म भी नहीं हुआ था तो उसमें उनका क्या दोष? लेकिन हिंदू धर्म समाज में सारा दोष जन्म से ही शुरू हो जाता है कि यह जन्मतः नीच है और वह जन्म से ही श्रेष्ठ है?

17 मार्च, 1884 को शाहू महाराज का दत्तक विधान और राज्यारोहरण संस्कार पूर्ण हुआ। चूँकि उस समय महाराज केवल 10 वर्ष के थे, लिहाजा अपनी शिक्षा पूर्ण करने के लिए उन्हें राजकोट के राजकुमार महाविद्यालय में भेजा गया। 31 दिसम्बर, 1885 को उन्होंने कोल्हापुर छोड़ा और राजकोट के महाविद्यालय में प्रवेश लिया। वहाँ पर अभी तीन माह भी नहीं बीतने पाए थे कि सूचना प्राप्त हुई कि उनके पिता गम्भीर रूप से बीमार हैं और बेहोशी की हालत में हैं। वह 20 मार्च को राजकोट विद्यालय से चले लेकिन जब 22 मार्च को कोल्हापुर पहुँचे तो पिता का देहांत हो चुका था।

मात्र बारह वर्ष की आयु में ही माता और पिता की स्नेहछाया से वंचित हो जाने के कारण उन्होंने पारिवारिक दुखों को बहुत नज़दीक से देखा था। इसी से वह बचपन से गम्भीर स्वभाव के हो गए थे, उनके मन में समाज के कमजोर, शोषित, वंचित और बहिष्कृत वर्गों के प्रति विशेष हमदर्दी दिखती थी। वास्तव में बचपन में झेले गए दुखों की छाया उन्हें इन समाजों के लोगों के सान्निध्य में प्राप्त होती थी। इनके बीच रहकर उन्हें हमेशा अपना बचपन दिखाई पड़ता था। बचपन से ही उन्हें अकेले रहने और गम्भीर चिंतन-मनन की आदत-सी हो गई थी। वह भगवान बुद्ध की तरह शोषित समाज के दुखों के बारे में सोचा करते थे कि इनके दुखों का उपाय क्या है? मतलब साफ है समाज के सबसे कमजोर वर्गों का उद्धार कैसे हो सकता हैं? उन्हें कैसे दमनकारी वर्ण व्यवस्थात्मक सता के खूनी पंजों से मुक्त दिलाई जाए। अपनी शिक्षा के दौरान उन्होंने जब विदेशी व्यवस्था की तुलना, अपने देश से की तो गम्भीर चिंतन-मनन के बाद वह इस निष्कर्ष पर आए

कि मात्र बराबरी का अधिकार कतई पर्याप्त नहीं है, इन समाजों को बचाने के लिए। वरन इन समाजों के लिए विशेष प्रतिनिधित्व की व्यवस्था बहुत आवश्यक है। जब तक विकास के हर क्षेत्र में इन्हें विशेष आरक्षण नहीं दिया जाएगा तब तक यह आगे नहीं बढ़ पाएँगे और न ही हिंदुओं/ ब्राह्मण, पुरोहितों की क्रूर वर्ण व्यवस्था के घातक सामाजिक और सांस्कृतिक हमले से अपना बचाव कर पाएँगे। हिंदुओं की अपनी विशिष्ट संस्कृति, जहाँ ईश्वर स्वयं मानवता की हत्या करने का अधिकार और आदेश देता है, से कमजोर वर्गों को बचाने के लिए विशेष प्रतिनिधित्व और उसके लिए विशेष प्राविधान अत्यंत आवश्यक है। उनके इस गम्भीर पठन-पाठन, अध्ययन-मनन का ही परिणाम था कि वह बहुत दृढ़ता से कदम उठाते थे और उसको लागू करवाने के लिए पूरी ताकत लगा देते थे। हर आक्रमण का मुकाबला बहुत ही धैर्य और साहस के साथ करते थे। अपने निर्णय पर चट्टान की तरह अडिग रहना और मात्र जनसेवा के चलते ही निर्णय में परिवर्तन करना उनकी आदत बन गई थी। राजकोट में महाराजा की शिक्षा वर्ष 1889 में सम्पन्न हुई। इसके उपरांत आगे की पढ़ाई के लिए वह धारवाड़ के महाविद्यालय के लिए रवाना हुए। यहीं से उनकी शिक्षा व्यवस्था की कमान सर स्टुअर्ट फ्रेजर के हाथ में आई। सर फ्रेजर उस समय की आईसीएस सेवा के अधिकारी थे और अधिकारी से अधिक वह बहुत अच्छे आदमी थे। महाराज के आगे के व्यक्तित्व पर सर फ्रेजर की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है। आगे के समय से सर फ्रेजर उनके शिक्षक और सलाहकार ही नहीं रहे, वरन उनका कद उनके पिता के समतुल्य था। 02 अप्रैल, 1894 में अंग्रेज सरकार ने कोल्हापुर के शासन सूत्र महाराज के हाथों में सौंप दिए। शाहूजी महाराज सत्ता में आते ही स्वयं निर्णय लेने लगे। यहीं से शुरुआत होती है उनके सामाजिक और सांस्कृतिक संघर्ष की जिससे भारतीय इतिहास में एक नया अध्याय शुरू हुआ। यहीं से वर्ण व्यवस्था के क्रूर पंजों में जकड़े हिंदू समाज को 'मानवता' नाम से एक नया परिचय मिला और दबे-कुचले लोगों को जीने का नया अवसर मिला। महाराज की इसी आदत ने पुरोहितों और अधिकारियों के कान खड़े कर दिए। अब तक तो यही होता आ रहा था कि शासन करना नीचे वाले लोगों का काम है।

राजाओं को इन सब कार्यों से क्या मतलब और सदियों से यही होता भी आ रहा था हिंदू व्यवस्था में यह साफ बताया भी जाता था कि शासक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य होता हैं वर्णाश्रम धर्म की स्थापना करना। इसी वर्ण व्यवस्था में सारा षड्यंत्र छिपा हुआ है। इसे शाहूजी महाराज ने बड़ी शिद्दत से महसूस किया और इसी कारण वह वर्ण व्यवस्था पर आधारित निर्णयों का विरोध करते थे। इसी

विरोध के कारण स्वाभाविक ही है कि उन्हें पुरोहितों और अधिकारियों दोनों के विरोध का सामना करना पड़ा। चूँकि उन्हें ब्रिटिश सरकार से समर्थन प्राप्त था अतः किसी ने सीधा विरोध तो नहीं किया, लेकिन हर समय उन्हें विरोध झेलना पड़ा। पुरोहित और अधिकारी दोनों ही संवर्गों में एक ही वर्ग विशेष अर्थात ब्राह्मण संवर्ग का ही बोलबाला था। मात्र इतना ही नहीं, राज्य के सचिवालय के शत-प्रतिशत पदों पर इनका ही कब्जा था। जब साफ-साफ विधान में ही लिखा हुआ था, कि सभी नागरिकों को *मनुस्मृति* के अनुसार रहना है। अर्थात सारी सत्ता ब्राह्मणों के हाथ में ही रहनी थी यह विधान था और सभी को उनका सेवक बनकर ही रहना था, तो क्या आदेश करना और क्या उसका पालन करना! लेकिन इतना बड़ा अन्याय महाराज कैसे बर्दाश्त कर लेते? अब उस समय उनके माता-पिता तो साथ थे नहीं, यदि वह होते तो शायद पुरोहित समाज इतने षड्यंत्र नहीं कर पाता। उनका अनुभव काम आता। लेकिन इस समय वह अकेले थे। आचार्य फ्रेजर थे लेकिन वह बाहर के थे। उन्हें देश और उसके अंदर की इतनी जानकारी नहीं थी। उनकी माता और परिवार की महिलाओं को पुरोहितों ने पूरी तरह जकड़ रखा था। वह केवल पुरोहितों की भाषा ही जानती थीं। इस तरह उन्हें दोहरी मेहनत करनी पड़ती थी। समाज के कमजोर वर्गों के लिए वह जो आदेश करते उसको असफल करने के लिए धूर्त पुरोहित समाज लग जाता था वहीं राजमहल की महिलाएँ उन्हीं पुरोहितों का समर्थन करती थीं। महाराज का पूरा जीवन इसी संघर्ष में व्यतीत हो गया। आज हम लोग यदि वर्ण व्यवस्था में सिर उठा कर जी रहे हैं तो उसके पीछे शाहूजी महाराज का संघर्ष समाहित है।

पारिवारिक जीवन

एक अप्रैल, 1891 को बड़ौदा के गुणाजी राव खानविलकर की कन्या लक्ष्मी बाई के साथ शाहूजी महाराज का विवाह हुआ। इस समय महाराजा की उम्र मात्र 17 वर्ष थी और लक्ष्मी बाई की उम्र मात्र 11 वर्ष। उस समय बेटियों का विवाह इतनी कम उम्र में ही हो जाता था। यह कोई असामान्य बात नहीं थी। उनके पिता का देहांत चार वर्ष पहले ही हो चुका था। अपने अंतिम समय में उनके पिता ने सर फ्रेजर से कहा था कि अब मेरा बेटा आपके हाथ में है। अब आप ही उसे सम्भालें। इस बात को शाहूजी भी अच्छी तरह समझते थे। वह यह भी भली-भाँति जानते थे कि राजमहल में हावी पुरोहित दल महाराजा को पुनः किसी न किसी बवाल में फँसाकर बंधक बना लेगा, जैसा वह इस राजवंश में कई पीढ़ियों से करता आ रहा था। विवाह के बाद परम्परा के अनुसार गर्भाधान संस्कार भी ससमय हो जाता था। राज परिवार की महिलाएँ उत्तराधिकारी के लिए पलक पाँवड़े बिछाए बैठी थीं और पिछले 50 वर्षों से इस राजमहल ने पालना नहीं सजाया था। अतः सर फ्रेजर ने महाराज को समझाया कि जब तक रानी की आयु गर्भधारण करने लायक नहीं हो जाती तब तक आप सावधान रहें। शाहूजी महाराज के लिए फ्रेजर एक गुरु ही नहीं, सब कुछ थे। कभी भी उन्होंने महाराज को गलत सलाह नहीं दी और महाराज ने भी उनकी सलाह को कभी नज़रंदाज नहीं किया। अतः गुरु सर फ्रेजर की सलाह पर महाराज और महारानी दोनों ही अलग-अलग विद्याध्ययन में लग गए। वह एक ही महल में रहते थे। अतः वह पुरोहितों की निगाह से बचे रहे। कोल्हापुर महाराज के महल में 10 मार्च, 1894 में पहली कन्या शिशु ने जन्म लिया। जिस राजवंश ने पिछले 50 सालों से पालना नहीं झुलाया हो उसे कन्या रत्न की प्राप्ति की कितनी खुशी होगी, इसका अंदाजा लगाया जा सकता है। पुत्री के जन्म के 20 दिन के बाद करवीर रियासत भी महाराजा के हाथ में आ गई। इससे कन्या रत्न के प्रति प्रसन्नता चौगुनी हो गई। माता-पिता ने बड़े स्नेह से पुत्री का नाम रखा राधाबाई। शीघ्र ही दूसरी कन्या रत्न की प्राप्ति राजमहल को हुई। इनका नाम आऊ बाई रखा गया था लेकिन दुर्योग

से इस कन्या की अल्पायु में ही मृत्यु हो गई। 31 जुलाई, 1897 को राजमहल को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। इस अवसर पर राज्य में इतनी खुशियाँ मनाई गई कि करवीर राज्य भी उसके सामने छोटा पड़ने लगा। इस बच्चे का नाम राजा राम रखा गया और आगे चलकर यही राज्य के उत्तराधिकारी हुए। इसके बाद पुनः महाराज को दूसरे पुत्र की प्राप्ति हुई, इसका नाम रखा गया शिवाजी। इस पाँच-छह वर्ष में राजमहल बच्चों की किलकारियों से गूँजने लगा। लेकिन इस तरह अत्यंत कम समय में महारानी को प्रसव पीड़ा होने के कारण वह अत्यंत कमजोर हो गईं और अक्सर बीमार रहने लगीं। इससे उनको स्वास्थ्य सम्बंधी कठिनाइयाँ भी होने लगीं। बहुत इलाज हुआ लेकिन वह कभी स्वस्थ नहीं हो सकीं। उनकी स्थिति एक बीमार जैसी ही बनी रही। यह भी हो सकता है कि यह भी पुरोहितों की एक चाल रही हो, जब दुश्मन घर में ही मौजूद हो तो कुछ भी असम्भव नहीं होता है। ऐसे में महारानी के सलाहकारों ने उनको ही सलाह दी कि महाराज को उप-पत्नी के लिए राजी करें। महाराज तैयार नहीं हुए फिर भी महल का पुरोहित दल इस काम में लगा ही रहा। उसका उद्‌देश्य था, किसी तरह महाराज पर काबू पाना। अपने इसी उपक्रम में उनके समक्ष कम वय की एक सुंदर महिला लाई गई। महाराज को बहुत झटका लगा। उन्होंने अपने साथियों को करारा जवाब देते हुए कुछ कहा तो नहीं लेकिन उस महिला का विवाह उसी की उम्र के अपने एक युवा अधिकारी से करा दिया। इस काम में जो भी व्यय आया उसे स्वयं वहन किया। महाराज समझते थे कि महल के इस गुट लोग उनके पीछे लगे ही रहेंगे और हो सकता है कि कोई नया षड्यंत्र कर बैठें इसलिए उन्होंने नर्तक कुल की एक प्रौढ़ महिला, जिसकी उम्र 40 के आस-पास रही होगी, को उपपत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया। कितनी महानता थी महाराज के मन में कि युवा महिला का विवाह उसकी उम्र के अफसर से करा दिया और राजपरम्परा को किनारे रख प्रौढ़वय की नर्तकी को स्वीकार किया। बावली बाई नाम था इनका। उनका आचार-व्यवहार बिल्कुल महाराज के जैसा ही था। विनम्रता की प्रतिमूर्ति। क्रोधित होते झल्लाते-चिढ़ते हुए तो किसी ने देखा ही नहीं उनको। अपने व्यवहार से शीघ्र ही उन्होंने सबका मन जीत लिया। दयालुता उनके रग-रग में बसी थी। बिल्कुल महाराज की तरह, किसी को बीमार पाया तो पहुँच गईं नर्स बनकर और दवा लेकर। कभी-कभी तो महाराज भी अचम्भे में पड़ जाते कि जिस समाज से वह आई हैं, वहाँ तो लोग केवल पैसा लूटना ही जानते हैं और यह तो लोगों की सेवा करने में ही लगी रहती हैं। उदारता उनमें कूट-कूट भरी हुई थी। महाराज और बावली बाई में अपने समान व्यवहार के चलते बहुत प्रेम था। वह अक्सर

अपने कामों में उनसे सलाह लिया करते थे। महाराजा शाहू को शेर पालने का शौक था। वह अपने सबसे करीबी और प्रिय पात्रों को शेर पालने की अनुमति देते थे, उन्होंने बावली बाई को भी पालने के लिए शेर दिया था। यह अधिकार केवल बावली बाई और पुत्रवधू रानी साहिबा इंदुमती को प्राप्त था। यहाँ तक कि राजमाता लक्ष्मीबाई को भी नहीं। बावली बाई ने अपनी प्रेम और मृदुल व्यवहार से शेर जैसे क्रूर जानवर को पालतू बना लिया था। महाराजा स्वयं बावली बाई की बहुत इज़्ज़त करते थे। लेकिन महाराजा पूरी तरह खुशकिस्मत नहीं थे। जैसा कि पहले ही सिद्ध किया जा चुका है कि जहाँ दुश्मन घर के अंदर ही मौजूद हो तो उसे और किसी दुश्मन की ज़रूरत ही नहीं पड़ती। बावली बाई की उम्र ज़्यादा थी। वह बीमार पड़ीं तो उठ नहीं पाईं। उनकी आँतों में सड़न शुरू हो गई थी। डाक्टरों ने कहा कि आँतों में नली डालकर गंदा पानी निकाला जाए तभी इन्हें बचाया जा सकता है। लेकिन ऐसी नली कैसे बने। उस समय विज्ञान इतना विकसित नहीं था। चिकित्सकों से समझकर महाराज के एक कारीगर ने चाँदी की ऐसी नली बनाई कि वह चिकित्सकों को पसंद आ गई। इस नली की सहायता से उनका उपचार हुआ लेकिन फिर भी वह छह माह ही जीवित रह पाईं। चिकित्सकों ने बहुत प्रयास किया लेकिन वह उन्हें बचा नहीं सके और बावली बाई की अकाल मृत्यु हो गई। एक बार फिर महाराज अकेले हो गए। बावली बाई की शवयात्रा निकाली गई। सोनतली में श्मशान जैसी शांति छाई हुई थी। सोनतली से कोल्हापुर तक पाँच मील का फासला हजारों लोगों से भरा हुआ था। बावली बाई इतनी लोकप्रिय थीं कि सबको उनमें अपनी माँ ही दिखाई पड़ती थी। ऐसी शोभायात्रा बहुत कम महिलाओं को नसीब होती है। बावली बाई ने एक बालक को गोद लिया हुआ था। बावली बाई की मृत्यु के समय वह लंदन में पढ़ाई कर रहा था। उसका नाम शंकर था। वह महाराज का अनन्य सहयोगी रहा। आगे चलकर महाराजा राजाराम ने भी उसे अपने पद पर ही कायम रखा। बावली बाई को महाराज ने केली गाँव में कुछ ज़मीन दे रखी थी। इस भूमि को बावली बाई ने किसी को भी नहीं दिया या उन्हें कोई ऐसा सुपात्र ही नहीं मिला जिसे वह दे पातीं या उनका मन गवाही देता। यहाँ तक कि अपने बेटे शंकर को भी नहीं। बावलीबाई की मृत्यु के बाद वह भूमि राजकीय भूमि में शामिल हो गई। बावली बाई की चारित्रिक महानता इससे भी स्पष्ट होती है कि जहाँ एक ओर पुरोहित भूखे भेड़ियों की भाँति लाश नोंचने पर जुटे थे वहाँ एक नर्तकी इतनी महान थी कि उसने भूमि देने लायक किसी को नहीं पाया और अंततः वह भूमि राजकीय भूमि में समाहित हो गई। बावली बाई के बाद तानी बाई महाराज के जीवन में

आईं। तानी बाई एक प्रसिद्ध गायिका थीं। जैसा कि पहले ही प्रसंग आया है कि शाहूजी महाराज जानते थे कि मुझे अकेला देखकर महल की पुरोहित मंडली को षड्यंत्र करने का अवसर न मिले। अतः उन्होंने तानी बाई की योग्यता देखकर उन्हें उप पत्नी के रूप में स्वीकार किया। तानी बाई जाति की सुनार थीं। उनके निवास के लिए बने महल को आज भी सोनार बांग्ला के नाम से जाना जाता है। संगीत के शौकीन महाराज अक्सर तानी बाई का संगीत सुना करते थे। एक दिन तो स्वर लहरी की हद ही हो गई। उस दिन की बैठक में महाराज, संगीत शिक्षक अल्लादिया खान और तानी बाई कुल तीन हो लोग थे। संगीत की स्वर लहरियाँ सुनकर एक नाग कब उस बैठक में आ गया इसका किसी को पता नहीं चला। रात्रि के पिछले प्रहर में जब पूरब दिशा से कुछ प्रकाश आना शुरू हुआ तो वह स्वर लहरियाँ पर झूमता दिखाई पड़ा। महफिल में सभी लोग संगीत की धुन में मस्त थे, लेकिन महाराज सजग थे। उन्होंने नाग को देख लिया लेकिन अफरा-तफरी न मच जाए, इसलिए वह कुछ बोले नहीं। वह जानते थे कि संगीत के रुकते ही वह जहाँ से आया है वहाँ वापस चला जाएगा। तानीबाई की निगाह पड़ी तो डर के मारे मुख से चीख निकल गई। महफिल समाप्त होने पर महाराज ने तानीबाई से कहा-

'तू मेरे लिए एक काम कर देगी?'

'महाराजा ऐसा कहकर शार्मिंदा क्यों करते हैं। मैंने कभी आपकी बात नहीं मानी क्या?'

'आज से गाना बंद, यह तबला फोड़ो अभी के अभी।'

तानीबाई जैसे आकाश से गिर पड़ी, उसने गुरु अल्लादिया खान की ओर देखा। उनकी मौन सहमति देखते ही तानीबाई ने तबला फोड़ डाला और गायन को हमेशा के लिए अलविदा कह दिया। कुछ समय बाद उन्होंने तानीबाई से पूछा-

'तुम्हें तबला फोड़ने के लिए मैंने क्यों बोला जानकारी है?'

'महाराज, मुझे कैसे जानकारी होगी?'

'तानी बाई इसके दो कारण हैं, पहला- तुम्हारे गाने से आकर्षित होकर नाग चला आता था। कहीं ऐसा न हो कि इससे तुम्हारी जान पर बन आए और दूसरा यह कि यदि तुम्हारे गायन में डूबा रहूँगा तो राज-काज का क्या होगा? तुमने मेरे शब्दों का सम्मान किया। यह मेरे लिए बड़ी बात है।'

शाहूजी महाराज-जान बूझकर ऐसा करते रहे जिससे पुरोहित वर्ग को मौका न मिले। इससे समाज के कमजोर वर्गों के प्रति उनकी करुणा झलकती है। उस

समय शासक वर्ग के लिए एक से अधिक पत्नियाँ रखना आम बात थी। राजपरिवारों में यह एक परम्परा के जैसा था लेकिन महाराज किसी दूसरी ही मिट्‌टी के बने थे और वह पुरोहित संवर्ग से पूरी तरह सजग थे तभी वह उस गलती से बच पाए जो गलती आगे चलकर बाबा साहब और हमारे समाज के अधिकतर महापुरुषों और नेतृत्वकर्ताओं से हो गई। भारतीय इतिहास गवाह है कि हमारे देश के मात्र दो महापुरुष ही इस श्रेणी में आते हैं। भगवान बुद्ध और शाहूजी महाराज, जिन्होंने मानवता के लिए अपना सुख और ऐश्वर्य त्याग दिया, पूरा जीवन देश और मानवता की सेवा में अर्पित कर दिया।

महल में सेवादारों के साथ शाहूजी महाराज

शिक्षा और भारत भ्रमण

वर्ष 1883 में छत्रपति शिवाजी चतुर्थ की असामयिक मृत्यु के बाद शाहूजी महाराज का राज्याभिषेक हुआ। उस समय उनकी शिक्षा पूर्ण नहीं हुई थी। ऐसी स्थिति में उनके गुरु और संरक्षक फ्रेज़र ने उनकी शिक्षा पाठ्यक्रम में बदलाव किए। उनकी शिक्षा शासन संचालन के विशेष उद्देश्य से विनियमित की गई। इसमें विशेष रूप से कानून, राज्य नीति, कर विधान, प्रशासन और दंड विधान जोड़े गए और देश-विदेश भ्रमण की योजना बनाई गई थी। धारवाड़ की शिक्षा पूर्ण कर उन्हें देश भ्रमण पर भेजा गया। देश भ्रमण की योजना स्वयं आचार्य फ्रेज़र ने बनाई। इस योजना में उत्तर भारत और दक्षिण भारत तथा श्रीलंका का भ्रमण आयोजित किया गया। उत्तर भारत की यात्रा में वह नासिक, बनारस, इलाहाबाद, दार्जिलिंग, आगरा, फतेहपुर सीकरी और दिल्ली भी गए। उन्होंने अपने पिता आबा साहब जय सिंह राव घाटगे के दादाजी के हिंदूराव महल को भी देखा। आज वहाँ हिंदूराव हॉस्पिटल बना हुआ है। वहाँ से वह जयपुर, अजमेर और मुम्बई होते हुए वापस कोल्हापुर आ गए। 16 नवम्बर, 1890 को जब वह नासिक पहुँचे तो वहाँ के पंडे-पुजारियों ने उन्हें घेर लिया। पंडे अपने साथ उनकी वंशावली लेकर आए थे और उनसे हस्ताक्षर कराना चाहते थे। अपने को असली पुरोहित बताते हुए उनमें से दो पंडे आपस में मुर्गों की भाँति लड़ गए। उन्होंने हस्ताक्षर करने से साफ मना कर दिया और जबरदस्त फटकार लगा कर उन्हें भगा दिया। उस समय महाराज की आयु 17 वर्ष से भी कम थी। इतनी कम उम्र में ऐसा निर्णय लेना एक सशक्त और प्रतिभाशाली व्यक्तिव का द्योतक है। वहाँ से वह बनारस और काशी गए और मणिकर्णिका घाट पर वही नज़ारा देखा ऐसे में उन्होंने वहाँ स्नान करने से मना कर दिया। वहाँ उन्होंने यह महसूस किया कि धर्म के नाम पर पुरोहित किस तरह जनता का शोषण करते हैं। जब राजा के सामने वह ऐसी हरकत कर सकते हैं तो आम जनता के साथ क्या करते होंगे, इसका अनुमान लगाया जा सकता है। वहाँ से वह मथुरा गए। उनके काफिले के पहुँचते ही मथुरा के पंडों ने घेर लिया। सभी उन्हें अपनी बनाई हुई वंशावली

दिखा कर अपने साथ चलने के लिए आपस में ही मार-पीट पर उतारू हो गए। यहाँ तक कि उन्हें हटाने के लिए पुलिस बुलानी पड़ी। अंततः ताँबे के सिक्के फेंक कर ही वह उनसे मुक्ति पा सके। जैसे ही उन्होंने पैसे फेंके, सारे पंडे-पुजारी पैसों पर टूट पड़े। इसी बीच उनकी सवारी वहाँ से निकल गई। उन्हें इस समय इस बात का एहसास हो गया कि क्यों मुगल बादशाह अकाल के समय नई-नई इमारतें बनवाते थे। यह प्रायोगिक तौर पर स्पष्ट हुआ कि निःशुल्क दी जाने वाली चीजों का अतिशय दुरुपयोग होता है और मुगल शासक इसी कारण अकाल के समय ऐसे काम करवाते थे ताकि वास्तव में गरीब जनता तक सहायता पहुँच सके नहीं तो उनके द्वारा भेजी गई सहायता बीच में ही लुट जाएगी।

इसी क्रम में उनकी शिक्षा का दूसरा सफर 5 नवम्बर, 1891 को प्रारम्भ हुआ। इसमें उन्होंने मद्रास, पांडिचेरी, तंजौर का भ्रमण किया। तंजौर से वह श्रीलंका गए। श्रीलंका के गवर्नर ने बहुत धूमधाम से उनका स्वागत किया।

शिक्षा का तीसरा सफर 28 अक्टूबर, 1892 को प्रारम्भ हुआ। इस भ्रमण में राजस्थान, पंजाब, सिंध, मुल्तान आदि क्षेत्रों का भ्रमण होना था। इस यात्रा में उनका दल माउंट आबू होते हुए जोधपुर पहुँचा। शाहूजी महाराज की रियासत कागल का घाटगे परिवार मूलतः जोधपुर के राठौर घराने से निकल कर अलग हुआ था। इस तरह से जोधपुर के राठौर उनके पुराने सगे-सम्बंधी थे। वहाँ के महाराजा सर जसवंत सिंह और उनके भाई कर्नल प्रताप सिंह ने रेलवे स्टेशन पर उनका जोरदार स्वागत किया। जोधपुर उस समय पुरुषों की बस्ती हुआ करता था। यहाँ राजपूतों में पर्दा प्रथा इतनी मजबूत थी कि महिलाएँ सड़कों पर दिखती ही नहीं थीं। यहाँ से होता हुआ उनका दल दिल्ली, मथुरा होते हुए लाहौर, सक्खर और चीमा साब, कराची तक गया। कराची उनके लिए विशेष महत्त्व रखता था। कराची में ही कोल्हापुर के चीमा साहब नज़रबंद थे। 1857 के संग्राम में कोल्हापुर से भाग लेने के कारण ब्रिटिश सरकार ने इन्हें यहाँ नज़रबंद कर दिया था। कराची में उनके ठहरने का प्रबंध मेरी बेदर बाग वाले सरकारी बंगले में किया गया था। यह बंगला विशेष रूप से चीमा साहब के लिए ही बनवाया गया था। दुखी मन से यहाँ से उन्होंने विदा ली यह शिक्षा-सफर 24 दिसम्बर, 1892 को पूरा हुआ।

यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि यदि चीमा साहब 1857 के विद्रोही थे तो ब्रिटिश सरकार ने उन्हें मारा क्यों नहीं? उन्हें नज़रबंद कर उनके ऊपर धन खर्च करने की क्या आवश्यकता थी? वह धन भी बच जाता जो आरोप उन पर लगाया जाता है कि उन्होंने देश की सम्पत्ति लूटी। उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था। ऐसे ही मुगल बादशाह को भी निर्वासित करने के स्थान पर खत्म कर देना अधिक

उचित था। लेकिन नहीं, उन्होंने हर एक विद्रोही पर मुकदमा चलाया। यदि उसका अपराध सीधे साबित नहीं हुआ तो उसके प्राण नहीं लिए गए, बल्कि कारावास देकर छोड़ दिया गया। वहाँ *मनुस्मृति* की तरह जाति-बिरादरी देखकर न्याय नहीं किया गया। यह न्यायप्रियता की मिसाल है। इसी न्यायप्रियता के बल पर उन्होंने आधे से अधिक विश्व पर शासन किया और उससे अधिक यूरोपियों ने पूरे विश्व पर शासन किया। इस तरह के उदाहरण हमारे देश के स्वदेशी इतिहास में नहीं हैं। यह भी गौर करने की बात है कि क्या ज़रूरत थी राजकुमारों को पढ़ाने और लिखाने की, वैसे ही रहने देते, सम्पूर्ण सत्ता तो उनके पास थी ही? इसका जवाब हमारे देशी इतिहासकारों, जो सीधे उन्हें देश का दुश्मन मानते हैं, के पास नहीं है।

साथियों के साथ शाहूजी महाराज

समाज सेवा और शिक्षा के कार्य

वर्ष 1894 में जब शाहूजी महाराज ने सत्ता की बागडोर संभाली तो उन्होंने जनता की वास्तविक स्थिति से रूबरू होने के लिए रियासत का भ्रमण करना शुरू किया। वह अक्सर समय मिलने पर या सुबह के समय सैर पर निकलते तो जंगलों में नहीं, वरन गाँवों में जाते। किसानों के खेतों में जाते। उनसे बातचीत करते। उनका हाल जानते। उनके इस प्रयोग से उन्हें सामान्य राजकाज की वास्तविकता का पता चला। ऐसे ही उन्हें यह पता चला कि राज्य में 600 मुकदमे अनिर्णीत पड़े हैं। उन्होंने पहला काम इन मुकदमों का निपटारा करने से प्रारम्भ किया। उन्होंने नियम बना दिया कि वह प्रतिदिन छह मामले निस्तारित करेंगे। उनके ऐसा करने से ये मुकदमे धीरे-धीरे कम होने लगे। लेकिन वकील इस काम से नाराज़ हुए। वह नहीं चाहते थे कि न्यायालय में मुकदमों की संख्या कम हो। यही हक़ीकत आज के न्यायालयों में भी है। यह वकीलों की खेती है जो मुकदमों का निपटारा होने से समाप्त हो जाती है।

ऐसे ही महाराज जब खेतों और खलिहानों में निकले तो किसानों के दैनिक जीवन में दरपेश होने वाली समस्याओं की जानकारी हुई। इसी के फलस्वरूप वह कुलकर्णी नामक समस्या में वाकिफ हुए और अंततः उसे समाप्त कर तलाठी की नियुक्ति की।

शाहूजी महाराज देश की परम्परागत शिक्षा व्यवस्था से बहुत चिंतित थे। जब भी समय मिलता वह अपने राज्य की बहुसंख्यक जनता को शैक्षिक विपन्नता से उबारने के उपाय खोजा करते थे। उन्हें यह जान कर आश्चर्य होता था कि समाज का प्रभु वर्ग अर्थात पुरोहित वर्ग हमेशा बहुसंख्यक मराठा समाज के विरोध में ही काम करता था। गरीबों का शोषण, उन पर अत्याचार, वह भी कानून बनाकर भारतीय समाज का सर्वकालिक चरित्र कहा जाए तो गलत नहीं होगा। कानून बनाकर देश और समाज को शिक्षा से वंचित करना, ऐसा संगठित, सामाजिक, सांस्कृतिक अपराध है जिसका कोई अन्य उदाहरण पूरे विश्व इतिहास में नहीं है। पुरोहितों का यह ऐसा गिरोह था जिसने सम्पूर्ण सत्ता को अपनी कुत्सित जकड़ में

आज भी ले रखा है। यदि हम यह कहें कि शाहूजी महाराज का पूरा जीवन ही मानवता को पुरोहित समाज की आपराधिक धूर्तता और कृतघ्नतापूर्ण भिक्षावृत्ति से मुक्त कराने में समाप्त हो गया तो यह कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। उनके द्वारा किए गए शैक्षणिक कार्यों में गरीब और सामाजिक तथा सांस्कृतिक रूप से दमित और शोषित जनता के प्रति उनकी हमदर्दी ही नहीं, जीवन का उद्देश्य नज़र आता है। शाहूजी महाराज के द्वारा राज्य में शिक्षा की उन्नति के लिए जो कार्य किए गए संक्षेप में उनका विवरण इस प्रकार है।

1. राज्य में शिक्षाधिकारी के पद को उच्चीकृत करना

जब महाराज शाहूजी ने राज्य की सत्ता संभाली उस समय राज्य की शिक्षा व्यवस्था मात्र एक शिक्षाधिकारी के हवाले थी। शिक्षा का प्रसार करने के उद्देश्य से राज्य में शिक्षाधिकारी के पद को उच्चीकृत कर प्रमुख शिक्षाधिकारी बनाया गया और तीन सहायक शिक्षाधिकारियों की नियुक्ति की गई।

2. प्रतिभाशाली छात्रों को शिक्षावृत्ति देना

देश के प्रतिभाशाली छात्रों को उच्च अध्ययन के लिए बड़े संस्थानों में भेजे जाने की योजना शाहूजी महाराज के द्वारा चलाई गई थी। देश में पहली बार ऐसा हो रहा था जब शिक्षा के लिए विद्यार्थियों को बाहर भेजने का खर्च किसी राज्य ने वहन किया हो। इस योजना के तहत वर्ष 1910-11 में 15 छात्रों को पूना, मुम्बई, आदि विश्वविद्यालयों में अध्ययन के लिए भेजा गया। इसमें महिला विद्यार्थी भी शामिल थीं। इस अभिनव योजना के हिसाब से यदि शाहूजी महाराज को आधुनिक भारत में उच्च शिक्षा का जनक कहा जाए तो यह उनके लिए सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

3. सभी विद्यालयों में कमजोर वर्ग के 15 प्रतिशत छात्रों की फीस माफी

समाज के कमजोर वर्गों की विशेष सहायता के लिए यह योजना बनाई गई थी कि प्रत्येक स्कूल में 15 प्रतिशत सीटों का शुल्क माफ कर दिया जाए। यह योजना 20 मई, 1911 को प्रारम्भ की गई।

अंग्रेजों के माध्यम से शिक्षा के दरवाजे तो बहुसंख्यक समाज के लिए खोल दिए गए थे लेकिन उस समय के पुरोहित समाज ने बहुसंख्यक समाज को इस कदर भ्रमित कर दिया हुआ था कि वह बिना फीस दिए भी बच्चों को स्कूल भेजने को तैयार नहीं होते थे। ऐसे में इस योजना में आधी सीटें भी नहीं भर पा रही थीं और इसका फायदा सम्पन्न पुरोहित वर्ग के परिवार ले रहे थे। जैसा कि आज भी हो रहा है। यह दिखाकर कि सीटें खाली रह जा रही हैं। ब्राह्मणों के बच्चों की भर्ती कर ली जाती थी। अतः यह निर्णय लिया गया कि यदि इनमें से

आधी सीटें कमजोर वर्गों से नहीं भर पा रही हैं तो उन्हें वर्ष भर रिक्त रखा जाए। इस योजना से शिक्षा के स्तर में बहुत सुधार हुआ।

4. स्कूल पंच पद्धति को मजबूत करना

ग्रामीण क्षेत्र में विद्यालयों के प्रबंधन के लिए पाँच प्रमुख ग्रामवासियों की समिति का गठन किया गया था। निश्चित रूप से इसमें भी ब्राह्मण संवर्ग के लोग ही भरे हुए थे। शाहूजी महाराज ने एक आदेश कर पंच पद्धति में गाँव के सभी वर्गों का होना अनिवार्य कर दिया। यद्यपि तात्कालिक तौर पर तो नहीं लेकिन आगे चलकर यह पंच शिक्षा के विकास में बहुत कारगर सिद्ध हुए।

5. वेतन और परीक्षा के आधार पर शिक्षकों की नियुक्ति प्रणाली

इस समय जो भी शिक्षा प्रणाली कार्यरत थी। भले ही वह गुरुकुल पर आधारित थी और उसमें केवल ब्राह्मण समाज के छात्र ही प्रवेश पाते थे। लेकिन इसमें शिक्षकों को परम्परागत रूप से वेतन के स्थान पर भूमि का टुकड़ा प्राप्त होता था और वह वंशानुगत रूप से शिक्षक का कार्य करते थे। शाहूजी महाराज ने यह पद्धति बंद कर दी और शिक्षकों को वेतन देने और परीक्षा के माध्यम से नियुक्ति की परिपाटी प्रारम्भ की। यह शिक्षा जगत का एक क्रांतिकारी आदेश था जिससे हमारा देश मध्यकाल से बाहर निकल कर आधुनिक विश्व व्यवस्था में शामिल हुआ।

6. शिक्षक प्रशिक्षण की शुरुआत करना

इस समय शिक्षा का विषय अत्यंत घिसा-पिटा हुआ था। परम्परागत रूप से महाकाव्य *वेद उपनिषद* ही शिक्षा की सामग्री हुआ करते थे। इसमें गणित, तर्क शास्त्र, विज्ञान, लेखा बही आदि का सर्वथा अभाव था। ऐसे में उन्होंने शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए नॉर्मल स्कूल की स्थापना करवाई, जिसमें सभी शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था की गयी थी।

7. दिल्ली दरबार पटेल स्कूल की स्थापना

मराठा प्रशासन में राजस्व का ग्रामस्तर का सबसे बड़ा अधिकारी पटेल हुआ करता था। लेकिन राजस्व वसूलने का काम कुलकर्णी के हाथ में होता था। राजस्व वसूलने का काम भले ही कुलकर्णी करते थे लेकिन उसके लिए जिम्मेदार पटेल पद धारक हुआ करते थे। पटेल पढ़े-लिखे नहीं थे जबकि कुलकर्णी पढ़े-लिखे होते थे। ऐसी दशा में अक्सर पटेल चाहकर भी कुलकर्णी पर नियंत्रण नहीं कर पाते थे। पटेल, जो कि ग्रामस्तर का कुलकर्णी से बड़ा अधिकारी होता था, को प्रभावी बनाने के उद्‌देश्य से उन्हें प्रशिक्षित करने के लिए पटेल स्कूल की

स्थापना की गई और इसे *दिल्ली दरबार पटेल स्कूल* नाम दिया गया।

8. सत्यशोधक स्कूल की स्थापना

शाहूजी महाराज का कालजयी कार्य उनकी क्रांतिकारी सोच और मानवता के प्रति उनके दृष्टिकोण को प्रदर्शित करता है। इस समय और आज भी हमारे समाज में यह एक बड़ी समस्या है कि मांगलिक कार्यों में धर्म विधि कैसे पूरी की जाए। यह क्षेत्र अभी तक केवल ब्राह्मणों के ही एकाधिकार में था। जिसका पूरा और अनियंत्रित फायदा पुरोहित समाज उठता था। इसका रास्ता निकालने के लिए इन स्कूलों की स्थापना की गई। यह ऐसा कदम था जिसने वर्ण व्यवस्था के मर्म पर चोट की। धर्मविधि करने के लिए सबको अर्थात अछूतों को भी धर्मविधि का प्रशिक्षण देने के लिए इसकी स्थापना की गई थी। इस क्षेत्र में काम को और आसान बनाने के लिए भास्कर राव जाधव के निर्देशन में हरिभाऊ चह्वाण के द्वारा मांगलिक कार्यों से सम्बंधित पुस्तकों का प्रकाशन भी कराया गया *घर का पुरोहित* इसी से जुड़ी हुई प्रमुख लोकप्रिय पुस्तक थी। इस पुस्तक में हिंदू धर्म में सम्पन्न की जाने वाली समस्त सोलह विधियों और संस्कारों का वर्णन किया गया था।

इस स्कूल की शुरुआत 1913 में की गई। इस स्कूल को इतनी लोकप्रियता मिली कि बड़ौदा राज्य ने यह आदेश किया कि पुरोहित का कार्य करने के लिए सत्यशोधक स्कूल का प्रमाणपत्र आवश्यक है। इस स्कूल में पूरे महाराष्ट्र से गैर ब्राह्मण युवकों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया और बड़ी संख्या में युवकों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया। यह एक ऐसा काम था, जिसे उनकी मृत्यु के 100 साल के बाद भी उत्तर भारत आज तक नहीं कर पाया हैं।

9. महिला शिक्षा के लिए प्रयास

उस समय राज्य की कुल साक्षरता मात्र 1.6 प्रतिशत थी और राज्य में ब्राह्मणों की संख्या 4 प्रतिशत थी। निश्चित रूप से 1.62 प्रतिशत में सारे ब्राह्मण पुरोहित ही शामिल थे। ब्राह्मणों की आधी आबादी अर्थात केवल पुरुष ही शिक्षित थे। महिलाएँ भी अशिक्षित थीं। ऐसे में महिलाओं की शिक्षा की बात करना अपने आप में क्रांतिकारी था। अक्टूबर 1919 में उन्होंने आदेश कर महिलाओं की शिक्षा को निःशुल्क बना दिया। उन्होंने आदेश में स्पष्ट किया कि छात्राओं की शिक्षा का पूरा व्यय राज्य वहन करेगा। इसके लिए अप्पा साहब और मामा साहब सूर्वे जैसे दो अधिकारियों की नियुक्ति की गई। लेकिन इस दिशा में बहुत सफलता नहीं मिल पाई। अतः इस दिशा में महिला शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए शिक्षावृत्ति की योजना बनाई और पाँच बेटियों, जिनके पिता उन्हें मुम्बई भेजने के लिए तैयार हो गए थे, को दिनांक 5 जनवरी, 1920 को सम्पूर्ण राजकीय व्यय पर उच्च शिक्षा

के लिए *सेंट कोलंबस गर्ल्स हाईस्कूल मुम्बई* भेजा गया और 500 रुपया अनुदान भी दिया गया। शाहूजी महाराज ने इस तरह से बहुत प्रयास किए लेकिन महिला शिक्षा में अपेक्षित प्रगति नहीं प्राप्त हो सकी। इसका प्रभाव हमें आगे चलकर प्राप्त होता है। इसी क्रम में महाराज के द्वारा बहुत-सी संस्थाओं को अनुदान भी दिया गया। इनमे से प्रमुख संस्थाएँ और उनको दी गई सहायता का विवरण निम्नवत है।

1. मराठा छत्रपति हॉस्टल पुणे को रुपये 300 का दान और पाँच वर्ष तक प्रति वर्ष रुपये 1000 का दान;
2. *डेक्कन एजुकेशन सोसायटी* को 5000 रुपये का दान;
3. *छत्रपति ताराबाई मराठा छात्रावास* को वर्ष 1892 में 22000 रुपये का दान;
4. *डेक्कन एजुकेशन सोसायटी* को प्रतिमाह 450 रुपये का दान;
5. *उदाजी मराठा विद्या हॉस्टल, नासिक* को 19,200 रुपये का दान, दिनांक 21 सितम्बर, 1920, 13 फरवरी, 1920 और 15 फरवरी को 10,000 रुपये का दान;
6. *डिप्रेस्ड क्लास हॉस्टल* को 5000 रुपये का दान;
7. पंढरपुर में *अस्पृश्य हॉस्टल* को प्रतिमाह 1350 रुपये का दान।

वेदोक्त/ पुराणोक्त विवाद और शाहूजी

आइए, पहले जान लेते हैं कि वेदोक्त और पुराणोक्त विवाद है क्या? शाहूजी महाराज, शिवाजी महाराज के वंशज थे। शिवाजी महाराज जैसे प्रतापी शासक, जिन्होंने औरंगजेब को नाकों चने चबवा दिए लेकिन नियंत्रण नहीं आ पाए। अंततः औरंगजेब की मृत्यु भी औरंगाबाद में ही हो गई थी। उसको भी ब्राह्मण समाज के लोगों ने शूद्र माना। निकृष्टता की और इससे अधिक पराकाष्ठा क्या हो सकती है कि इतने प्रतापी शासक को भी शूद्र माना जाए। शाहूजी महाराज शिवाजी महाराज के वंशज थे। अतः इन्हें भी ब्राह्मणों ने क्षत्रिय नहीं माना। ब्राह्मणों के नियमों के अनुसार केवल ब्राह्मण और क्षत्रियों को ही यह अधिकार है कि उनके अनुष्ठानों में वेदों के मंत्रों का पाठ किया जाए। शेष वर्णों के लिए वेद-मंत्र विहित नहीं हैं। शेष वर्णों अर्थात शूद्रों के लिए पुराणों के मंत्र ही विहित हैं। तत्कालीन ब्राह्मणों के अनुसार शिवाजी और शाहूजी दोनो ही मराठा अर्थात शूद्र थे अतः उनसे सम्बंधित अनुष्ठानों में वेद मंत्रों का पाठन नहीं हो सकता था। उनके अनुष्ठानों में पुराणों के मंत्रों का पाठ ही हो सकता था। अब चूँकि शाहूजी महाराज कोई मरियल शासक तो थे नहीं कि ऐसी अभद्रता बर्दाश्त कर लेते। वह लग गए इन्हें सबक सिखाने और ठीक करने। यही है वेदोक्त विवाद।

कोल्हापुर रियासत में समाज के कमजोर वर्गों को न्याय दिलाने के लिए की जाने वाली अपनी कवायद के चलते शाहूजी महाराज अखबारों में एक खलनायक के रूप में चित्रित कर दिए गए थे। (चूँकि अखबारों पर केवल ब्राह्मण समाज का ही कब्जा था, अतः जनकल्याण और मानवता वाले काम करने के बाद भी शाहूजी महाराज को एक ब्राह्मण को एक ब्राह्मण विरोधी और खलनायक के रूप में चित्रित किया जाता था।) यहाँ तक कि पुरोहितों ने उन्हें अपना जानी दुश्मन मान लिया था। वे शाहूजी महाराज को एक चुनौती के रूप में लेते थे। इस समय बाल गंगाधर तिलक और उनके मित्र शाहूजी महाराज पर यह दबाव डाल रहे थे कि दिवालिया हो चुकी पूना सिल्क मैनुफैक्चरिंग कम्पनी को सरकार को खरीद लेना चाहिए। शाहूजी ने इसकी जाँच कराई तो मालूम हुआ कि तिलक और

उनके मित्रों ने ही कम्पनी को नुकसान पहुँचाया है और लूटकर डुबो रहे हैं। ऊपर से सरकार पर दबाव डालकर वह एक बार फिर लूट का खेल खेलना चाहते हैं, जिससे उन्हें बिना कोई काम किया पैसा मिलता रहे। शाहूजी के प्रधान सचिव श्री सबनीस ने पत्र के माध्यम से इस कम्पनी को खरीदने से मना कर दिया था। ऐसे में तिलक और उनकी टीम सबनीस के पीछे पड़ गई। उन्होंने सबनीस के ऊपर भ्रष्टाचार के बहुत से तथ्यविहीन आरोप लगाए और उन्हें पद से हटाने की माँग शुरू कर दी। शाहूजी महाराज सारा प्रकरण समझ रहे थे। अतः उन्होंने जाँच की प्रक्रिया पूरी कराई और रिपोर्ट के आधार पर कार्यवाही करते हुए श्री सबनीस को प्रोन्नत करते हुए उनकी नियुक्ति दीवान पद पर कर दी। इससे पुरोहित बिल्कुल बौखला उठे। इसी बौखलाहट में ब्राह्मण-पुरोहितों ने नरसोबावाडी मंदिर में सबनीस और उनके परिवार के लोगों को प्रवेश नहीं करने दिया। इतना ही नहीं, ये सब पुरोहित शाहूजी महाराज के भी पीछे पड़ गए। शाहूजी महाराज रोज पूजा-पाठ किया करते थे और मंदिरों में जाया करते थे और कुछ निश्चित अवसरों पंचगंगा में स्नान के लिए भी जाते थे। ऐसे ही एक दिन शाहूजी महाराज पंचगंगा में स्नान के लिए गए हुए थे। उनके साथ में उनके भाई बापू साहब घाटगे, मामा खानविलकर और अन्य लोग भी थे। उनके साथ मंत्रोच्चार के लिए नारायण नामक पुरोहित और राजाराम शास्त्री नाम के एक सहयोगी भी थे। नारायण पंडित कभी-कभी स्वयं बिना स्नान किए ही महाराज के स्नान विधि को पूर्ण कराता था। इस दिन भी वह बिना स्नान किए ही मंत्रोच्चार कर रहा था। राजाराम शास्त्री ने पूछा कि वह पुराणोक्त पाठ क्यों कर रहा है? नारायण पंडित ने उत्तर दिया कि शूद्रों के लिए वैदिक मंत्र विहित नहीं है और स्नान करने की भी ज़रूरत नहीं है। नारायण पंडित शाहूजी का नौकर था। एक नौकर ऐसा जवाब देगा, उन्होंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था। सर्वाधिकार सम्पन्न होते हुए भी वह उस समय शांत बने रहे। दरबार में पहुँच कर उन्होंने उसे कोड़े से पिटवाया और नौकरी से निकाल दिया। इस पुरोहित के घमंड का कारण उसकी धर्मसत्ता थी। मराठे क्षत्रिय हैं या शूद्र यह पृथक प्रश्न था। उनको वेदोक्त धर्म विधि का अधिकार था या पुराणोक्त धर्मविधि यह राजा का प्रश्न था। जब राजा की यह स्थिति थी तब आमजनों का क्या होता होगा, विचारणीय प्रश्न यह था? इससे भी अधिक विचारणीय यह कि आगे चलकर बाल गंगाधर तिलक भी पुरोहितों के साथ हो लिए और शाहूजी को ही बदनाम करने में लग गए। यहाँ तक कि ब्रिटिश प्रतिनिधि ने इस पर अपना मत देने से मना कर दिया और मामला न्यायालय पहुँचा। न्यायालय में ब्राह्मणों की करारी हार हुई। अब देखिए, हार पर भी टिप्पणी करते हुए *केसरी* में बाल गंगाधर

तिलक लिखते हैं कि बेशक शाहूजी महाराज को वेदोक्त का अधिकार है। यह उनका पक्का अधिकार है किंतु यह अधिकार उनको राजा होने की हैसियत से है। अतः उनके भाई और उनके परिवार के सदस्यों को यह अधिकार नहीं है। केवल राजा को ही क्षत्रियत्व प्राप्त है। वह भी अंग्रेजी न्यायालय से, और उनके परिवार को नहीं। इस तरह से इस प्रकरण का पटाक्षेप हुआ है।

यह प्रकरण उन लोगों के लिए एक सीख है जो ओबीसी समाज में पैदा होने के बाद भी अपने को क्षत्रिय कहलाना पसंद करते हैं। जब शासक की यह हाल था तो जन सामान्य का क्या हाल होगा यह विचारणीय है। आज की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं हैं। जब मौका मिलने ही मुख्यमंत्री के आवास का गंगाजल से शुद्धिकरण होता और उन्हें टोंटी चोर बता दिया जाता है।

शाहूजी महाराज

शंकराचार्य की धर्म सत्ता को चुनौती

शाहूजी महाराज के द्वारा किया गया यह कार्य आज भी उनके व्यक्तित्व को मानवता की ऊँचाइयों तक ले जाता है। शंकराचार्य की सत्ता को चुनौती देने का साहस भारतीय इतिहास में केवल अंग्रेजों को ही प्राप्त है। देशी राजाओं में यह श्रेय केवल शाहूजी महाराज को है। सम्पूर्ण भारतीय इतिहास में बिना किसी अपवाद के सारे के सारे शासक शंकराचार्य की सत्ता को अपने सिर पर लाद कर, कमजोरों पर पाशविक अत्याचार करने के अधिकार को बदस्तूर बनाए रखने के लिए पलकें बिछाए नज़र आते हैं। केवल शाहूजी महाराज ही ऐसे अकेले शासक हैं जिन्होंने मानवता की रक्षा के लिए शंकराचार्य की सत्ता को उखाड़ फेंका। यद्यपि उनको इसका खामियाजा भी भुगतान पड़ा। शंकराचार्य और उनकी ब्राह्मणी सत्ता ने शाहूजी महाराज को शैक्षिक जगत से ही बाहर कर दिया। एक ऐसा शासक जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन शिक्षा, समाज कल्याण और मानवता की सेवा में समर्पित कर दिया उसका नाम ही इतिहास और शिक्षा जगत से मिटाकर शंकराचार्य की सत्ता ने पूरा बदला लिया।

कोल्हापुर के शंकराचार्य वासुदेव शास्त्री भिलवाडिकर प्रारम्भ में वेदोक्त विवाद से दूर थे। वह अन्य पुजारियों की भाँति मठ की सम्पत्ति का मनमाना उपयोग कर रहे थे, जैसा कि हर मठ और मंदिर में आज भी चल रहा है। शासन सत्ता का काम-काज अपने ढंग से चल ही रहा था कि बाल गंगाधर तिलक के बहकावे में आकार भिलवाडिकर ने वेदोक्त प्रकरण में महाराज का विरोध कर दिया और अपनी सभाओं में साफ-साफ कहा कि महाराज की वेदोक्त माँग गलत है। सदियों से चली आ रही पौराणिक परम्परा का उन्हें पालन करना चाहिए। वह क्षत्रिय नहीं हैं अतः उन्हें वेदोक्त का अधिकार नहीं है। इस मठ को सारी सम्पत्ति और अधिकार महाराजा ने ही दिए या दिलवाए थे। इनकी इस घृष्टता से शाहूजी महाराज को बहुत धक्का लगा, लेकिन वह शांत बने रहे और वर्ष 1963 के आज्ञा पत्र का हवाला देकर वर्ष 1903 में शंकराचार्य के मठ की समस्त सम्पत्ति जब्त कर ली और वहाँ पुलिस का पहरा बैठा दिया। जैसे ही भिलवाडिकर को

इसकी भनक लगी वह आनन-फानन में अपने एक युवा शिष्य काशीनाथ बुवा गोसावि बृम्हनालकर को गद्दी सौंपकर संकेश्वर भाग गया कि कहीं शाहूजी उसे जेल में न डाल दें। चूँकि संकेश्वर, कोल्हापुर से बाहर था अतः वह शाहूजी महाराज की सत्ता से बाहर था। अतः वह बचा रहा, लेकिन वर्ष 1903 के दूसरे आदेश में उन्होंने मठ के दीवानी अधिकारी भी छीन लिए और शंकराचार्य की सत्ता ध्वस्त कर दी। सम्पूर्ण मध्यकाल और आधुनिक काल में किसी भी शासक के पास इतना मनोबल नहीं था कि वह शंकराचार्य के गलत कामों को गलत बनाने का साहस कर सके। भारतीय इतिहास के सारे राजे-महाराजे, शंकराचार्य अथवा ब्राह्मणों के चरणों में लोटते-पोटते नज़र आते हैं। वह विरोध क्या करेंगे। भारतीय इतिहास के सारे महाराजे उनकी कृपादृष्टि की छाया के लिए हाथ बाँधे खड़े रहते थे और केवल उतना ही करते थे जितना करने का निर्देश उन्हें पुरोहित से मिलता था। यह भारतीय इतिहास की कड़वी सच्चाई हैं जिसको शाहूजी महाराज ने केवल ध्वस्त ही नहीं किया वरन उखाड़ फेंका था।

ब्रिटिश अफसरों के साथ एक समारोह में शाहूजी महाराज

अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा

आज से 100 साल पहले महाराजा श्री शाहूजी ने यह समझ लिया था कि शिक्षा से ही समाज का उद्धार हो सकता है। अतः समाज में शिक्षा के प्रसार के लिए उन्होंने अथक और अनवरत प्रयास किए। उनका एक प्रयोग असफल हो जाता तो वह तुरंत उसे बंद कर उसमें सुधार कर नया प्रयोग शुरू कर देते। शाहूजी महाराज के समय *वर्तनी शिक्षा योजना* चल रही थी। इसमें शिक्षक को वेतन के बदले भूमि दी जाती थी और पीढ़ी दर पीढ़ी वह भूमि उसी के पास रहती थी। चाहे वह जैसा भी शिक्षक हो। शिक्षक का पद वंशानुगत था। यह आदिम व्यवस्था थी। शाहूजी महाराज ने इसे बंद कर दिया और शिक्षकों को राजकोष से वेतन देना प्रारम्भ कर दिया। प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए उन्होंने हर गाँव में पाठशाला की योजना प्रारम्भ की। प्रत्येक गाँव में पाठशाला खोलना एक बहुत बड़ा क्रांतिकारी निर्णय था। लेकिन इसके लिए आर्थिक समस्या सामने आने लगी। राजकोष में इतना धन नहीं था कि उससे प्रत्येक गाँव में स्कूल खोला जा सके। फिलहाल ऐसे गाँवों, जहाँ की जनसंख्या 500 से अधिक थी, वहाँ विद्यालय खोलकर सभी के लिए शिक्षा योजना की शुरुआत कर दी गई और इस कार्य के लिए उन्होंने एक लाख रुपये की व्यवस्था की। यह कहने की आवश्यकता नहीं हैं कि उस समय वर्ण व्यवस्था अपनी पूरी कठोरता के साथ लागू थी। परम्परागत रूप से पढ़ने और पढ़ाने वाले, दोनों केवल ब्राह्मण ही हुआ करते थे। वर्ण व्यवस्था के इनबिल्ट (अंतर्स्थापित) कानूनों के अनुसार ब्राह्मण वर्ण के अतिरिक्त अन्य वर्णों को पढ़ने का अधिकार नहीं था और इसको लागू कराने वाले ब्राह्मण ही थे। राजवंशों की बात अलग है। उनकी तुलना हम जनसामान्य से नहीं कर सकते हैं। उनके प्रचार का दुष्प्रभाव जनमानस पर इस कदर हावी था कि बहुसंख्यक जनमानस का यह मानना था कि पढ़ना-लिखना अपना काम नहीं है। वर्ण व्यवस्था के अनुसार जिसे जो कार्य दिया गया था वह उससे आगे बढ़ने की सोच भी नहीं पाता था। साथ ही आर्थिक समस्या सिर पर सवार रहती थी। बच्चे, पिता के कार्य में शुरू से ही हाथ बँटाते रहे हैं और इस तरह से वह पिता

के व्यवसाय में निपुण होते जाते हैं। विद्यालय जाना इस तरह से अपने परम्परागत व्यवसाय के लिए बाधा बन जाता था और दूसरी ओर, एक वर्ग का काम ही पढ़ाई करना और शासन करना था। यह एक इतना बड़ा षड्यंत्र था, जिसे आज भी लोग समझ नहीं पाते हैं। शाहूजी महाराज ने इस षड्यंत्र को बड़ी शिद्दत से समझा। अनिवार्य और निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा उसी का परिणाम थी। उस समय यह कहावत प्रचलित थी-

महारों का गाना, कुनबी का दाना और ब्राह्मणों का लिखना-पढ़ना।

ऐसे में सभी के लिए शिक्षा जनसामान्य के लिए एक अजूबा योजना थी। मराठा ही इसका विरोध करते थे और इसको हवा देने के लिए ब्राह्मण समाज पहले से ही कमर कसे बैठा था। अज्ञानता के साथ-साथ गरीबी के मराठा समाज अपने बच्चों को स्कूल भेजता ही नहीं था। इसका पूरा लाभ धूर्त पुरोहित समाज उठाता था। गाँव में खुलने वाले विद्यालयों में सबसे अधिक संख्या ब्राह्मण समाज के बच्चों की ही बनी हुई थी। मराठा समाज के बच्चे पढ़ाई में आगे बढ़ें, इसके लिए इन बच्चों की स्कूल फीस भी माफ की गई। इस योजना का एक तोड़ यह निकाला गया कि एक निश्चित समय निकल जाने पर सीट खाली रह जाने पर फीस माफी का लाभ अन्य समाज के बच्चों को दे दिया जाए। किससे पूछना था, सभी ऊपर से नीचे तक अपने ही आदमी थे। कुछ समय बाद उन्होंने एक रास्ता और निकाल लिया। वह जान-बूझकर बच्चों को स्कूल से भगा देते और एक समय के बाद सीट खाली दिखाते और निःशुल्क सीट पर अपने समाज के बच्चों का प्रवेश ले लेते। जब शाहूजी को यह पता चला तो उन्होंने निर्देश जारी किया कि कुछ भी हो मराठों के लिए दी गई निःशुल्क सीटें वर्ष भर खाली ही रखी जाएँगी। उन पर किसी और समाज के बच्चों की भर्ती नहीं की जाएगी। जानकारी के लिए बताते चलें कि यह धूर्तता आज भी चल रही है। मराठा समाज के बच्चों और उनके अभिभावकों को प्रोत्साहित करने के लिए कई प्रयास किए गए, जिसमें प्रभातफेरी निकालना भी शामिल था। लेकिन अपेक्षित परिणाम न आते देख उन्होंने अनिवार्य और निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की योजना बनाई। इस योजना में बहुत व्यय आ रहा था। इस योजना में हर गाँव में स्कूल खोला जाना अनिवार्य था। यह एक बड़ा काम था जिसमें अदम्य साहस, दृढ़ इच्छाशक्ति और कठोर अनुशासन की आवश्यकता थी। शाहूजी महाराज ने यह खोज करना प्रारम्भ किया कि कौन-सी ऐसी संस्था है जो साम्राज्य के हर गाँव तक फैली हो उसी को साथ में ले लिया जाए। उन्होंने देखा कि मंदिर हर गाँव में बने हुए हैं और जनसामान्य की इनमें बहुत बड़ी आस्था भी है। यदि इनके परिसरों का उपयोग विद्यालय के लिए कर

लिया जाए तो विद्यालय स्थापना का एक बहुत बड़ा कार्य हो सकता है। लेकिन वह जानते थे कि यदि इसे ऐच्छिक रखा गया तो केवल 10 विद्यालयों की स्थापना ही हो पाएगी। अतः उन्होंने एक ही झटके में आदेश कर समस्त मंदिरों का अधिग्रहण कर लिया और मंदिर परिसर में प्राथमिक विद्यालय की स्थापना का आदेश कर दिया। शाहूजी महाराज का यह आदेश एक कालजयी और महान क्रांतिकारी आदेश था। यदि इस फार्मूले का उपयोग आगामी शासकों ने किया होता तो हम आज फ्रांस और ब्रिटेन से पीछे नहीं होते। मंदिरों का अधिग्रहण एक ऐसा आदेश था जिसकी बराबरी आज तक भारतीय इतिहास में कोई शासक नहीं कर पाया है।

मंदिरों में स्कूलों की स्थापना हो गई। अब आगे समस्या आई कि शिक्षकों की कमी कैसे पूरी की जाए। इसके हिसाब से शिक्षकों की भर्ती करने में बहुत समय लग रहा था। शिक्षकों की कमी को दूर करने के लिए भी उन्होंने एक नायाब तरीका खोज निकाला। अपने कार्यालय में राजकीय सेवा में कार्यरत ऐसे सभी कर्मचारियों के लिए आदेश कर दिया कि उन्हें प्राथमिक विद्यालय में पढ़ाना अनिवार्य होगा, जिनकी उम्र 25 वर्ष से कम है। इस तरह से शिक्षकों की कमी को दूर करने का प्रयास किया गया।

तत्कालीन ब्राह्मण संगठनों और समाचार पत्रों ने अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा का कड़ा विरोध किया, साथ ही लिखा कि यह राज्य के संसाधनों की बर्बादी है। ठीक इसी समय *राजा राम कॉलेज* का एक प्रकरण चल रहा था जिसमें धनाभाव के चलते राजा राम कॉलेज को बंद कर दिया गया था। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि *केसरी* जैसे समाचार पत्र इस घटना की यह कह कर आलोचना कर रहे थे कि छोटे बच्चों के लिए बड़े बच्चों की पढ़ाई रोकने का क्या मतलब है? (उस समय अजीब मूर्खतापूर्ण बौद्धिकता फैली हुई थी- जब छोटे बच्चे पढ़ेंगे ही नहीं तो बड़े व शिक्षित बच्चे क्या ब्रह्मा के मुख से पैदा होकर आएँगे?) आज भी यही चल रहा है जब कक्षा आठ तक किसी को फेल न करने का आदेश किया गया है। मज़े की बात यह है कि वह स्वयं तो अपने स्तर से कोई प्रयास भी नहीं कर रहे थे। मंदिरों के पास अथाह दौलत थी। उन्होंने कभी यह नहीं कहा कि *राजा राम कॉलेज* के लिए मंदिरों और बड़े सामंतों को आगे आना चाहिए। उनका काम ही आलोचना करना था। मानो आलोचना करने का उन्हें पैदायशी विशेषाधिकार प्राप्त हो। अनिवार्य शिक्षा का यह कहकर भी विरोध किया गया कि जो नहीं चाहते उनके लिए राज्य के संसाधनों को व्यय करना मात्र फिजूलखर्ची है। क्या जमाना था। अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को हमारे समाचार पत्र फिजूलखर्ची बता रहे थे।

मतलब बौद्धिक दिवालिएपन के सारे संसाधन मौजूद थे। शुल्क माफी योजना से शाहूजी महाराज को यह कटु अनुभव मिल चुका था कि यदि प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य नहीं बनाया जाएगा तो बहुजन समाज के बच्चों को धूर्त-पुरोहित समाज विद्यालय में आने ही नहीं देगा। चूँकि ब्राह्मण समाज को हटा पाना सम्भव नहीं है। अतः अनिवार्य शिक्षा ही एकमात्र रास्ता है। बहुत ही आसानी से यह लोग बहुजन बच्चों को मूर्ख बताकर और उनके अभिभावक, जो पहले से ही कमजोर और धर्म भीरु हैं, को बड़ी आसानी से बाहर कर देंगे। इस सम्बंध में एक और मजेदार वाकया प्रकाश में आता है। अंग्रेजी सरकार के दबाव और प्रलोभन के चलते (यह तथ्य अपने आप में इतना महत्वपूर्ण है कि हमारे इतिहास की चूलें हिला सकता है। दबाव और प्रलोभन किसके लिए! हमारे समाज और बच्चों के लिए!! अंग्रेजों ने किया। जो हमारे दुश्मन थे?) दरभंगा के महाराजा अपने राज्य में अनिवार्य और निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा लागू करने के लिए तैयार हो गए। (आज की तारीख में कितने शर्म की बात है कि 'अंग्रेज सरकार के दबाव में') उनके दरबार के लोगों, हम समझ सकते हैं कि ये कौन लोग होंगे, ने यह कहकर महाराजा को समझा लिया कि जो नहीं पढ़ना चाहते उनसे जबरदस्ती न की जाए। यह उन बेचारे गरीब लोगों पर दोहरी मार से कम नहीं होगा कि जो बेचारे दो समय की रोटी जुटा नहीं पाते उन्हें बच्चों को स्कूल भेजने के लिए बाध्य किया जाए। इससे उन गरीबों की दशा और भी खराब होगी। यह अपने परिवार के साथ अपनी रोजी कमाने में लगे रहते हैं। ऐसे में उनको भूखे मरने की नौबत आ जाएगी। बहुत से लोगों को वह दरबार में बुला भी लाए और उनसे कहलवा दिया कि हम सब दिहाड़ी मजदूर हैं, हमें इससे दूर ही रखा जाए। अब दरभंगा के महाराजा, शाहूजी तो थे नहीं कि दरबार के विरोध को झेल पाते। चारों ओर वही सब थे। दबाव पड़ा और उन्होंने निःशुल्क शिक्षा को तो मान लिया लेकिन उसमें से अनिवार्य शब्द निकाल दिया। परिणाम बिहार और शेष भारत में, विशेष रूप से देशी राजाओं के शासन क्षेत्र में, वर्ण व्यवस्था की सख्ती बरकरार रही। पाठक यह समझ सकते हैं कि हमारे असली दुश्मन कौन हैं या थे?

अनिवार्य और निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की योजना के लिए सबसे पहले ऐसे गाँवों का चयन किया गया, जिनकी जनसंख्या 500 से एक हजार तक थी। आगे चलकर इसे सभी ग्रामों में लागू किया गया। अध्यापकों की कमी को पूरा करने के लिए ऐसे राजकीय कर्मचारी जो 25 वर्ष से कम उम्र के थे, को अनिवार्य रूप से ट्रेनिंग देकर शिक्षण कार्य में लगाया। इससे शिक्षकों की कमी की समस्या तात्कालिक तौर पर समाप्त हो गई। आगे चलकर शिक्षकों की भर्ती पर विशेष जोर

देकर शिक्षा विभाग को और अधिक मजबूत बनाया गया। आज भी शाहूजी महाराज के द्वारा किए गए कार्यों का प्रतिफल हमें पूरे महाराष्ट्र में दिखाई पड़ता है। हमें वहाँ गली-मोहल्लों में विद्यालय और छात्रावास मिल जाते हैं।

शाहूजी महाराज की प्रतिमा

अस्पृश्यों की हाज़िरी प्रथा की समाप्ति

देश में मध्यकाल में प्रचलित क्रूरतम और अमानवीय कानूनों में शामिल यह कानून एक ऐसी व्यवस्था थी, जिसके तहत समाज के एक वर्ग के बारे में यह मान लिया गया था कि वह वंशानुगत रूप से अपराधी है। उसे यहाँ से निकालने की आवश्यकता नहीं है। उसे जन्मजात अपराधी मानकर पीढ़ी दर पीढ़ी ऐसे अपराधों का समाजिक दंड झेलने के लिए अभिशप्त कर दिया गया था जो उसने किया ही नहीं था और न ही कहीं से भी उसके लिए वह जिम्मेदार ही था। अपने पुरखों के द्वारा किए गए अपराधों, जो कि निश्चित रूप से वर्ण व्यवस्था की जकड़न के चलते बिना किए ही सिद्ध हो गए रहे होंगे, के लिए विहित दंड को सहन करने के लिए वह सदियों से मजबूर था। दूसरे शब्दों में वह ब्राह्मणों का सामाजिक और सांस्कृतिक गुलाम था। इस व्यवस्था के तहत महार, मांग, रामोशी और बेरड़, को बिना कोई अपराध किए ही अपराधी मान लिया गया था। निश्चित रूप से इसमें शामिल जातियाँ आज की तारीख में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति में शामिल हैं। इन समाजों के सदस्यों को आनुवांशिक अपराधी मानकर इन पर प्रतिबंध लगाए गए थे। इसके तहत इनको स्थानीय शासन (तत्समय राजा रजवाड़ा या स्थानीय पुलिस थाना या पुलिस पटल) पर प्रतिदिन अपनी उपस्थिति दर्ज करानी पड़ती थी। अर्थात असल मायने में वह गुलाम थे, दास थे। यह उस क्षेत्र विशेष को छोड़ नहीं सकते थे। आगे चलकर इस कानून ने और जोर पकड़ा और यह एक बेगार व्यवस्था में तब्दील हो गई। अर्थात बिना कोई मजदूरी दिए काम करवाने का अधिकार। कोई विरोध करे तो जैसे चाहें वैसे दंडित करने का सर्वाधिकार सुरक्षित, ऐसी दशा में इन समाजों के सामने अपराधवृत्ति से बाहर निकलने का रास्ता ही बंद हो गया था। इन क्षेत्रों में कोई भी अपराध होता था तो सीधे-सीधे इन्हें ही उसका जिम्मेदार मान लिया जाता था। यह सब बहुत ही आसान था वर्ण व्यवस्था की लूट-पाट में। जैसे आज भी होती है सत्य की परीक्षा, जलाकर या पानी में डुबोकर और उससे भी आगे यादव गाय पाले तो तबेला और क्षत्रिय गाय पाले तो गोशाला अर्थात जिसको चाहे दंडित कर दें। अपमान करना

तो आम बात है। मानवीय असंवेदनशीलता की पराकाष्ठा थी।

शिक्षक का बेटा शिक्षक,
अधिकारी का बेटा अधिकारी, और
चोर का बेटा चोर।

इस स्थिति में बिना कोई गुनाह किए ही वह गुनाहगार माना जाता था तो वह अपनी रोजी-रोटी के लिए और भी बड़ा अपराध करता था और इस तरह वह सामाजिक दुश्चक्र में फँसकर रह गया था। कालांतर में इस समाज के लोगों को स्थानीय चौकीदारी का काम सौंप दिया जाने लगा। ऐसा मानकर कि यह लोग अपराधी जाति के हैं और यही लोग स्थानीय अपराधों की जानकारी दे सकते हैं। इन लोगों की सहायता से इनके समाज के लोगों को बहुत ही आसानी से किसी भी अपराध में फँसाकर मनचाहे ढंग से दंडित किया जा सकता है। यही व्यवस्था आगे चलकर 'वतन' व्यवस्था में बदल दी गई। इसके तहत इस समाज के परिवारों को कुछ भूमि इसलिए दे दी जाती थी कि वह परम्परागत रूप से और आधिकारिक तरीके से इस कार्य को करते रहें। वर्ण व्यवस्था और उससे उपजे प्रभु वर्ग की मनमानी के चलते यह वतन व्यवस्था महार समाज की पहचान बन गई थी। शाहूजी महाराज को जैसे ही इस प्रथा की जानकारी हुई, उन्होंने तत्काल ही इसका अध्ययन कर इसे समाप्त करने का आदेश कर दिया। दिनांक 01 अगस्त, 1918 को उन्होंने आदेश निर्गत कर इस प्रथा को समाप्त कर दिया। इस कानून के आ जाने से महार जाति की परम्परागत चौकीदारी और केवल चौकीदारी ही नहीं, वरन सदियों की गुलामी समाप्त हुई। उनके इस आदेश के स्पष्टीकरण के लिए 30 मई, 1919 में सतारा के पुलिस अधीक्षक ने पत्र के माध्यम से यह अनुरोध किया था कि आज तक हाजिरी देने वाले लोग जब दूसरे क्षेत्रों में जाएँगे तो इनकी सूचना स्थानीय थाना को होनी चाहिए। इसके प्रतिउत्तर में 04 जून, 1919 को महाराज ने कहा- 'मैंने हाजिरी समाप्त कर दी है। बिना कोई गुनाह किए ही किसी को बाधित करना, निरुद्ध रखना मेरी ही नहीं हिज मैजेस्टी को भी स्वीकार्य नहीं है। बहुत छोटे से भूमि के टुकड़े, जिससे एक परिवार का पालन-पोषण नहीं हो सकता, के लालच में इनका जीवन बर्बाद हो रहा है। अब हाजिरी समाप्त होने के बाद वे गाँव छोड़कर बाहर आ जा सकते हैं। अपने अनुसार अपने व्यवसाय का चुनाव कर सकते हैं और सिर उठाकर जीवन जी सकते हैं। वे आज़ाद हैं। वे कहीं भी जाएँ उन्हें कहीं सूचना देने की कोई आवश्यकता नहीं है। किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं है।' अर्थात गुलामी समाप्त।

इस हाजिरी व्यवस्था पर यदि हम गहराई से विचार करें तो यह पाते हैं कि

हाजिरी के नाम पर यह तो भयंकर गुलामी थी, जिसमें मजदूरी माँगने का भी अधिकार नहीं था और यह अंग्रेजों ने नहीं किया था। यह हमारे पुरोहितों की जमात ने बना रखा था। देश की बहुसंख्यक आबादी से सामाजिक और सांस्कृतिक गुलामी करवा कर संतुष्टि नहीं मिली तो हाजिरी व देवदासी प्रथा भगवान के नाम पर चला दी। अंग्रेजों ने तो इसे समाप्त किया। और कहा जाता है कि हम अंग्रेजों के गुलाम थे। हम अंग्रेजों के नहीं, ब्राह्मण-पुरोहितों के गुलाम थे? और आज भी हैं!

उपरोक्त सारी बातों के होते हुए भी जीवन के सबसे महत्वपूर्ण अवसरों पर केवल उतना ही कार्य किया जाता है जितना पुरोहित अनुमति देता है। भले ही वह और उसका समाज आरक्षण का, नौकरियों और पढ़ाई में हमारा विरोध करता हो लेकिन होता केवल उतना ही है जितना वह आदेश करता है। हमारे घरों में जन्म, मृत्यु और विवाह संस्कारों का निर्धारण, उसके समाज के बिना आज भी सम्भव नहीं है।

विधवाओं के पुनर्विवाह के लिए कानून

समाज सुधार, जनकल्याण और मानवता के लिए कानून बनाना एवं सुंदर-सुंदर बातें करना दोनों बिलकुल अलग-अलग बातें हैं। विधवाओं के लिए पुनर्विवाह का कानून बनाने का कार्य शाहूजी महाराज को आधुनिक भारतीय शासकों से ऊपर उठाते हुए लॉर्ड विलियम बैटिक तथा लॉर्ड मैकाले की श्रेणी में लाकर खड़ा कर देता है, जिन्होंने अपने निर्णयों से इस देश की तस्वीर और तक़दीर बदल दी। किसी भी समाज और देश की उन्नति वहाँ की महिलाओं और समाज के कमजोर वर्गों के लिए प्रावधानित, वैधानिक व्यवस्था से आकलित की जाती है। उदाहरण के लिए, हम अपने पड़ोसी देश नेपाल में झाँककर देखें तो पाएँगे कि वहाँ सब बराबर हैं। कोई अलग प्रावधान नहीं हैं, महिलाओं और समाज के कमजोर एवं पिछड़े वर्गों के लिए। परिणाम सामने हैं। गरीब और पिछड़ा देश। आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के देशों में यदि हम देखें तो पाते हैं कि बिना किसी एक्सेप्शन के सभी आधुनिक देशों में महिलाओं और समाज के कमजोर वर्गों के संरक्षण के लिए विशेष प्रावधान हैं। चाहे वह अफरमेटिव एक्शन के नाम से हों या अन्य नाम से, लेकिन प्रावधान अवश्य हैं। यही प्रावधान ही देश को समृद्ध बनाते हैं। परिवर्तन और विविधता प्रकृति का नियम है और सबमें समानता एवं बराबरी विकसित करना मानव सभ्यता का चरम विकास। आज से लगभग 200 साल पहले वर्ष 1829 की बात करें तो हमारे देश में सती प्रथा को कानून बना कर प्रतिबंधित किया गया था अंग्रेज अफसर (लार्ड विलियम बैटिक) के द्वारा। इसके 90 वर्ष के बाद यानि वर्ष 1919 में विधवाओं को पुनर्विवाह अर्थात जीवन का अधिकार मिलता है कोल्हापुर राज्य में। यह एक बड़ा पैमाना है समाज के उन्नत होने और हमारे विकसित होने का। विश्व के किसी भी राष्ट्र में सती प्रथा और देवदासी जैसी प्रथा नहीं है। शाहूजी महाराज ने महिलाओं की इस स्थिति को समझा और विधवाओं के पुनर्विवाह के लिए कानून बनाया। कानूनन विधवाओं का विवाह वैध घोषित किया। इसके पहले विधवाओं का विवाह निषिद्ध था। यदि कोई अपनी विधवा बेटी का विवाह करना भी चाहता था तो वह कानूनन वैध ही

नहीं था। साफ शब्दों में कहें तो विधवा औरत पूरी ज़िंदगी बाबा और बाबू को शारीरिक सेवा देने के लिए अभिशप्त थी। यही कारण था कि तत्समय का कानून उसे जीवित रहने का अधिकार तभी देता था जब वह विधवा बन कर ही रहे। दूसरी ओर, ब्राह्मण पुरोहित इसका पुरजोर विरोध करते थे, यह भय दिखाकर कि भयंकर अनिष्ट हो जाएगा। भयंकर विपदाएँ आ जाएँगी। उनके हर कार्य की प्रतिक्रिया के हिसाब से इसका भी तीव्र प्रतिरोध हुआ। सारे दैनिक समाचार पत्रों ने जानकर भड़ास निकाली कि 'शाहू महाराज को ब्राह्मणों को चिढ़ाने में ही आनंद आता है। शाहूजी महाराज को धार्मिक मामलों में दखल देने से बचना चाहिए। ठीक है ब्रिटिश सरकार ने यह कानून पास किया है लेकिन हिंदू राजाओं को अपने धर्म का भी खयाल करना चाहिए।' मतलब धर्म के नाम पर अपराध और लूटमार, यही चरित्र था हमारे देश के आध्यात्मिक नेताओं का। भला हो अंग्रेजों का जिनके चलते जीने और सम्मान से रहने का अधिकार मिला, महिलाओं और समाज के कमजोर वर्गों को।

विरोध! चरित्रहनन और जान से मारने की धमकी

आखिर कौन-सी ताकतें हैं जो महापुरुषों का विरोध करती हैं? निश्चित रूप से जिनका नुकसान हुआ या होता रहता है। उसके कार्यों से किसको नुकसान हुआ और किसको फायदा यह स्वतः स्पष्ट है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है। समाज और सत्ता पर अनियंत्रित कब्जे के बावजूद थोड़ा-सा अधिकार बहुजनों के पास जाता भी तो वह पुरोहितों को बर्दाश्त नहीं हुआ? मज़े की बात है कि हम अभी भी उनसे ही पूछकर अपना सारा निर्णय करते हैं (जीवन के सबसे महत्वपूर्ण अवसरों पर शुभ या अशुभ अवसर पर ब्राह्मणों से पूछकर ही कार्य करना)। खैर, शाहूजी महाराज के कोल्हापुर महल में, जहाँ उनका घर परिवार रहता था। वहाँ एक पारसी परिवार, जो जीरगे नाम से जाना जाता था, के राजमहल की महिलाओं से पारिवारिक सम्बंध थे। उस समय राज परिवारों में महिलाओं का निवास पृथक हुआ करता था, वहाँ केवल राज परिवार के सदस्य और अन्य घरों की महिलाओं का ही आना-जाना होता था। जीरगे परिवार की महिलाएँ अचार-मुरब्बा आदि बनाने में बहुत प्रवीण थीं। उनका राजमहल में आम और खास अवसरों पर आना-जाना लगा रहता था। इस परिवार की एक सुंदर कन्या महल की सरकारी गाड़ी से आती-जाती थी। ऐसे ही एक दिन उसके आने-जाने का समय देखकर दरबार के पुरोहितों ने अफवाह फैला दी कि जीरगे परिवार की महिलाओं से महाराज के अनैतिक सम्बंध हैं। इसके कुछ समय के बाद ही उस कन्या के पिता की मृत्यु भी हो गई। बस, अब तो और मजबूत बहाना मिल गया। समाचार पत्रों में छप गया कि बात और बदनामी को छिपाने के लिए शाहूजी महाराज ने उसके पिता की हत्या करवा दी।

इसी तरह से, वर्ष 1912 में एक गुमनाम पत्र दिल्ली सरकार में वायसराय की पत्नी लेडी मिंटो को मिला, जिसमें यह बताया गया था कि कोल्हापुर राज्य में कोई भी महिला, विशेष रूप से ब्राह्मण महिला, सुरक्षित नहीं हैं। ब्राह्मण महिलाओं को शाहूजी महाराज से खतरा है। हमें ऐसे अत्याचारी शासक से मुक्ति दिलाई जाए।

इस पत्र का हवाला देकर कोल्हापुर के *केसरी, लोकशाही, राजकारण* और अन्य समाचार पत्रों ने खूब नमक-मिर्च लगाकर शाहूजी महाराज के विरुद्ध ज़हर उगला। कुलकर्णी एसोसिएशन की ओर से संकेश्वर में 16 और 17 मई, 1920 में आयोजित परिषद की अध्यक्षता करते हुए दत्तोपंत बेलवीं ने कहा, 'No man's wife and life are safe in Kolhapur State' अर्थात कोल्हपुर राज्य में किसी की भी औरत और जीवन सुरक्षित नहीं है। बाल गंगाधर तिलक के *केसरी* ने शीर्षक लगाया 'कोल्हापुर राज्य में किसी की भी इज़्ज़त और जीवन सुरक्षित नहीं है।' घटना की जाँच के लिए स्वयं शाहूजी महाराज ने बम्बई सरकार से अनुरोध किया। जाँच हुई, उससे साफ निकलकर आया कि महाराज तो राजमहल में निवास करते ही नहीं थे, वह तो सोनतली आश्रम में ही निवास करते थे। अतः खबर असत्य पाई गई और प्रकरण का पटाक्षेप हो गया।

उस समय और आज भी मीडिया और शिक्षा जगत पर ब्राह्मण समाज के लोगों का ही कब्जा है। चूँकि ब्राह्मण अथवा पुरोहित समाज अपने आगे सारे मनुष्यों को जानवर समझता है आज भी जहाँ पिछड़ों के हक और अधिकार की बात होती है वहाँ यह समाज अपने सारे साजों-सामान के साथ हर नैतिक, अनैतिक तरीके से प्रहार करना प्रारम्भ कर देता है। आरक्षण का विरोध और सवर्णों का आरक्षण 24 घंटों में ही लागू कर देना, इस बात का पक्का सबूत है कि सवर्णों को देश, नैतिकता, न्याय, मानवता और अच्छाई से कोई मतलब नहीं, उन्हें केवल अपने स्वार्थ से ही मतलब है और उसके लिए वे किसी भी सीमा तक जा सकते हैं। उस समय की मीडिया क्या कहती थी। उस समय ब्राह्मणों के सबसे बड़े नेता बाल गंगाधर तिलक थे। शाहूजी महाराज राजा थे और शासक होने के नाते वह समाचार पत्र *केसरी* की सहायता भी करते थे। लेकिन *केसरी* ने हमेशा उनका विरोध ही किया, कभी भी समर्थन नहीं किया।

लोक संग्रह ने लिखा, 'शाहू राजा को ब्रिटिश भारत की राजनीति में दखल नहीं देना चाहिए। शाहूजी को अपने संस्थान *करवीर स्टेट* में काम करने का बहुत अवसर है फिर भी शाहू राजा को अपना सयानापन दिखाने का लालच कंट्रोल नहीं होता।' मानो यह अधिकार केवल ब्राह्मणों और पुरोहितों की ही बपौती है कि सरकार के कामकाज में दखल दें। *राजकारण* ने लिखा, 'अंग्रेजों को अपना कारोबार किस तरह करना चाहिए, इसकी सलाह देना हँसी-मजाक की बात है।' *केसरी* ने लिखा, 'जिन्हें वर्ष 1902 में छत्रपति के आदेशों का जरा भी ज्ञान है उन्हें इसमें कोई चमत्कार नहीं दिखेगा। नए मराठा जगद्‌गुरु बनाना, अखबारों को पैसे देकर अपने शागिर्द के रूप में पालना, सत्यशोधक समाज के अपराधियों को

संरक्षण देना यह कोल्हापुर की कूटनीति का द्योतक है। ब्राह्मणों का सारा झगड़ा इसी की देन है।'

तास गाँव के कुलकर्णी परिषद के दिन अर्थात 17 मई, 1921 *दैनिक केसरी* का शीर्षक था- *हमारे स्वराज द्रोही छत्रपति*, मनमाना कारोबार, जुल्म, जबरदस्ती अमानुष अत्याचार करके प्रजा को सतानेवाला लोकद्रोही राजा, स्वराज की संकल्पना का विरोध करने वाला, आज़ादी की लड़ाई में अवरोध पैदा करने वाला, स्वराज की गुप्त खबर अंग्रेजों को देनेवाला, स्वराज आंदोलन को दबानेवाला, अपने स्वार्थ के लिए ब्रिटिशों की जी-हुजूरी करने वाला, राष्ट्र के साथ गद्दारी करने वाला, राष्ट्र के साथ बेईमानी करने वाला स्वराजद्रोही छत्रपति।' इस तरह के भड़काऊ और अपमानजनक शीर्षक *केसरी* लगा रहा था।

दैनिक केसरी समाचार पत्र परिवार के ही अंग्रेजी पत्र *मराठा* ने अपने मुखिया का साथ देते हुए 22 मई, 1921 को अपने अंक में An Exalted Trader शीर्षक से शाहूजी महाराज के ऊपर कीचड़ उछाला। बम्बई के *लोकमान्य* पत्र ने 20 मई 1920 को लिखा, 'शाहू राजा की हैसियत एक सामान्य हेर (जासूस) से अधिक नहीं है और वह स्वराजद्रोही हैं। *लोकसंग्रह* ने लिखा- शाहूजी महाराज का हृदय उनकी चमड़ी की तरह ही काला है।' *लोकशाही* ने 23 मई, 1921 के अंक में लिखा, 'महाराजा ने आज़ादी के संघर्ष को नष्ट करने का प्रयास करके महाराष्ट्र को कलंक लगवाया है स्वराज्य आंदोलन का विरोध करने वाले शाहू महाराज को गद्दी त्याग देना चाहिए।' *इंडियन सोशल रिफॉर्मर* ने अपने 5 जून, 1921 के अंक में लिखा, 'शाहू राजद्रोही हैं और उनका पूरा अधःपतन हुआ है।' इस पूरी कवायद में बाल गंगाधर तिलक का पत्र *केसरी* भी अपनी पूरी क्षमता के साथ शामिल था। बाल गंगाधर तिलक कितने लोकमान्य थे इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि शाहूजी महाराज उनकी सहायता करते थे। तिलक के राष्ट्रीय आंदोलन में वह आर्थिक मदद भी करते थे। वर्ष 1817 में कोल्हापुर राज्य के विश्वसनीय अधिकारी विट्ठल काका भिड़े को कम से कम चार बार आर्थिक सहायता लेकर महाराज ने भेजा था। यह सहायता भी शाहूजी महाराज गुप्त रूप से अपने भाई बापू राव के माध्यम से स्थानीय मेलों में किया करते थे, जिससे ब्रिटिश सरकार को शंका नहीं हो। आलंदी, पंढरपुर के मेले के माध्यम से नियमित रूप से सहायता पहुँचाई जाती थी। शाहूजी महाराज अपने सबसे विश्वसनीय अफसर दाजीराव अमृतराव विचारे के द्वारा कई बार तिलक को आर्थिक सहायता भिजवाई थी। ये सारे तथ्य श्री विचारे के कार्यालय से पुष्ट होते हैं। इस पर भी तिलक का जो व्यवहार *दैनिक केसरी* से ज्ञात होता है वह

अत्यंत शर्मनाक और धूर्ततापूर्ण, कुटिलता और नीचता की पराकाष्ठा है।

प्रसिद्ध क्रांतिकारी अरविंदो घोष पर जब संकट आया तो शाहूजी महाराज ने उनकी सहायता की। इस समय उन्होंने बड़ौदा के खासेराव जाधव के भाई कैप्टन माधवराव जाधव के हाथ पाँच हजार रुपये भिजवाए थे। तिलक के विरोध में चिरोल में जो मुकदमा चल रहा था उसमें सहायता करते हुए ब्रिटिश सरकार के दो गोपनीय पत्र शाहूजी महाराज ने तिलक के वकील दादा साहब करंदीकर को भिजवाए थे जिसके कारण वे चिरोल केस में छूट पाए थे। इतना होने पर भी *केसरी* और अन्य समाचार पत्र उन्हें देशद्रोही कहने से बाज नहीं आए। यही कारण था कि अंग्रेजों ने ब्राह्मणों की न्यायालय में भर्ती पर रोक लगा रखी थी, यह मानते हुए कि इनमें न्यायिक चरित्र नहीं होता।

वर्ष 1992 में राज्य की सेवाओं में गैर ब्राह्मणों को 50 प्रतिशत आरक्षण देने से ब्राह्मण समाज विशेष रूप से नाराज था। शाहूजी महाराज के समाज कल्याण के कार्य पहले से ही उन्हें पसंद नहीं आ रहे थे। ब्राह्मण पुरोहितों ने हर तरह से उनके सामाजिक कार्यों का विरोध किया था विद्यालयों की स्थापना से लेकर छात्रावासों की स्थापना तक। चूँकि समाज के पिछड़े वर्गों के उत्थान का उनका प्रत्येक कार्य स्वचालित रूप से प्रभुत्व वर्ग अर्थात ब्राह्मणों के विरोध में चला जाता था। बिल्कुल वैसे ही जैसे आज के समय में आरक्षण का प्रावधान भी ब्राह्मण और प्रभुत्व वर्ग के विरुद्ध मान लिया जाता है। ऐसे में उनका नाराज होना स्वाभाविक था। उनकी यह नाराजगी वर्ष 1902 में अत्यंत प्रखर हो गई थी जब उन्होंने राजकीय पदों पर आरक्षण का प्रावधान किया। दैनिक समाचार पत्रों ने तो अभद्र व्यवहार किया ही, उसके अतिरिक्त उन्हें जान से मारने की धमकी भी दी गई। उनकी बेटी के विवाह में बम विस्फोट का प्लान भी बनाया गया। जब वह विदेश यात्रा पर थे तब राज परिवार की महिलाओं को डराने और उनमें दहशत पैदा करने के लिए इन लोगों ने राजमहल की दीवारों पर खूनी पंजे भी लगवाए।

वर्ष 1902 में जब वह लंदन की यात्रा पर थे तो विदेश यात्रा निषिद्ध है, यह दिखाने के लिए, खून से सने पंजे राजमहल की दीवारों पर लगवाए और यह अफवाह फैलाई कि हिंदू धर्म में सागर पार यात्रा निषिद्ध है। महाराज के सागर पार यात्रा करने के कारण ही कोप हुआ है। इससे राजपरिवार की महिलाएँ भयभीत हो गईं और न चाहते हुए भी महाराज को अपनी यात्रा अधूरी छोड़कर बीच में ही वापस आना पड़ा। पुरोहित समाज अंग्रेजों के साथ-साथ शाहूजी महाराज को अपना दुश्मन मानता था। इनमें कर्नल फेनिस, जो इस समय कोल्हापुर के ब्रिटिश राजप्रतिनिधि (रेजिडेंट) थे, को वह सबसे बड़ा दुश्मन

मानता था। इनके खास प्रचारक या यूँ कहें गुंडों, जिसमें दामू जोशी, गणपत राव मोडक और नारायण जोशी प्रमुख थे, ने कर्नल फेनिस के हत्या की योजना बनाई। उन्होंने यह मान लिया कि पूना की सम्पूर्ण अशांति का एकमात्र कारण कर्नल फेनिस हैं। यह जल्द ही सेवानिवृत होने वाले हैं। अभी तो ये कड़ी सुरक्षा में रहता है। रिटायर होने के बाद इनकी सुरक्षा समाप्त हो जाएगी। तब इनका सफाया करना आसान होगा। योजना बनाई गई कि शाहूजी महाराज की पुत्री का विवाह होने वाला है। अतः यह समय अधिक उपयुक्त रहेगा। इससे यह सारा आरोप शाहूजी के सिर आ जाएगा और इस तरह, एक तीर से दो शिकार हो जाएँगे। विवाह के अवसर पर विस्फोट के लिए बम की व्यवस्था करने दामू बम्बई आया और वहाँ के स्थानीय आर.बी. गद्रे के माध्यम से बापट से मिला। बापट बम बनाने की कला में सिद्धहस्त था। बापट को दामू जोशी की योजना पसंद आई और 21 मार्च, 1908 को विवाह के अवसर पर कर्नल फेनिस के ऊपर बम फेंकने की योजना बन गई। विवाह जैसे मांगलिक अवसर को भी पुरोहितों ने अपने हाथ से नहीं छोड़ा यद्यपि समय से बम नहीं मिल पाया और यह योजना सफल नहीं हो सकी। यदि उन्हें कर्नल फेनिस को मारना था तो शाहूजी महाराज को उससे घसीटने की क्या ज़रूरत थी। लेकिन यह पुरोहित संवर्ग उस समय और आज भी नैतिक और बौद्धिक रूप से इतना पतित है कि अपने स्वार्थ के लिए यह क्या कर सकता है अनुमान लगाना सम्भव नहीं है। इस योजना के फेल होने के बाद इन लोगों ने कर्नल फेनिस को पिस्तौल से मारने की योजना बनाई। 16 अप्रैल, 1908 को कर्नल फेनिस रेलगाड़ी से यात्रा कर रहे थे। गोपालपुरी स्टेशन के पास इन लोगों ने पिस्तौल से फायर कर दिया, लेकिन गोली मिस हो गई और फेनिस सही-सलामत बच गए। 5 जनवरी, 1918 को लार्ड चेम्सफोर्ड की शाहूजी की वार्ता चल ही रही थी जिसमें उन्होंने मराठों के लिए पृथक निर्वाचन मंडल दिए जाने का अनुरोध किया था। उसी वार्ता के दौरान ही शाहूजी महाराज को कोल्हापुर के मुख्य पुलिस अधिकारी का तार मिला। इस तार में लिखा हुआ था कि ब्राह्मण बस्ती में पर्चे लगाए गए हैं जिनमें धमकी दी गई है कि 'छत्रपति शाहू को 20 फरवरी, 1918 से पहले खत्म कर दिया जाएगा। इसकी जानकारी केंद्रीय गृह मंत्रालय को दे दी गई है।' केंद्रीय गृह मंत्रालय ने शाहूजी की सुरक्षा के लिए सादी वर्दी में गुप्तचर और पुलिस तैनात कर दिए। लेकिन शाहूजी महाराज इससे जरा भी विचलित नहीं हुए। वह 11 फरवरी, 1918 से पहले दिल्ली से कोल्हापुर लौट आए और अपने मिशन में लग गए।

तिलक और शाहूजी के बीच संघर्ष

यह हमारे समाज की विडंबना है कि बाल गंगाधर तिलक जो कि महान स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के रूप में माने जाते हैं उनका शाहूजी महाराज के द्वारा किए जा रहे सामाजिक और मानवतावादी कार्यों से कोई सरोकार नहीं था। यह तथ्य अपने आप में बहुत ही आश्चर्यजनक लगता है और सहसा इस पर विश्वास नहीं होता। लेकिन यह इतिहास की कड़वी सच्चाई है। बाल गंगाधर तिलक शाहूजी महाराज के समकालीन थे। वह *केसरी* नाम से दैनिक पत्र निकालते थे। उसके माध्यम से उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम का बीड़ा उठा रखा था। वह केवल देशहित की बात करते थे। उन्हें देश के कमजोर वर्गों से कोई मतलब नहीं था। देश की बहुसंख्यक जनता वर्ण व्यवस्था, क्रूर ब्राह्मणवाद, अस्पृश्यता जाति से उत्पन्न गरीबी और पाशविक प्रताड़ना झेलने को अभिशप्त थी। उन्हें इससे कोई मतलब नहीं था। वह इतने बड़े लोकमान्य थे। यहाँ तक कि शाहूजी महाराज के द्वारा किए जा रहे शिक्षा और समाज कल्याण के कार्यों से कोई वास्ता न होना तो दूर की बात थी वह शाहूजी महाराज के कार्यों का विरोध करते थे। शाहूजी महाराज को खुलेआम राष्ट्रदोही, अंग्रेजों का पिट्ठू मानते थे और सामाजिक रूप से शूद्र कहकर अपमानित करते थे। वेदोक्त प्रकरण में अन्यायपूर्ण और गलत होते हुए भी उन्होंने पुरोहितों का ही साथ दिया था और एक बार नहीं, कई-कई बार लिखा कि शाहूजी महाराज का कथन गलत है और पुरोहित सही कहते हैं। शाहूजी महाराज को वेदोक्त अधिकार नहीं हैं, वह शूद्र हैं। मामला अंग्रेजी न्यायालय में गया। अंग्रेजी न्यायालय ने साफ-साफ निर्णय दिया कि शाहूजी महाराज क्षत्रिय हैं। इस पर *केसरी* की टिप्पणी थी कि निश्चित रूप से शाहूजी क्षत्रिय हैं और उन्हें वेदोक्त अधिकार है। लेकिन यह अधिकार उनको राजा होने के कारण है। उनके परिवार और उनके भाई को वेदोक्त अधिकार नहीं है। कितनी धूर्तता की बात है कि पहले यही बात गंगाधर तिलक का पत्र उन्हें शूद्र बताते हुए कह रहा था कि उन्हें वेदोक्त का अधिकार नहीं है और न्यायालय से निर्णय होने बाद कह रहा है कि उन्हें यह अधिकार है लेकिन उनके परिवार को नहीं। मतलब *केसरी* जैसे पत्र की हैसियत और सम्मान

एक दलाल से अधिक की नहीं था। इस पत्र की हैसियत एक निर्लज्ज विदूषक से अधिक की नहीं थी जो मार खाने के बाद भी हँसता रहता है। बाम्बे स्पिनिंग मिल के कारोबार में बाल गंगाधर तिलक भी शामिल थे। कतिपय कारणों से यह स्पिनिंग मिल घाटे में आ गई और बंद होने की स्थिति में आ गई। बाल गंगाधर तिलक का कहना था कि दिवालिया हो चुकी मिल को शाहूजी महाराज को सरकार की ओर से खरीद लेना चाहिए, जिससे उसे संचालित किया जा सके। शाहूजी महाराज ने इस प्रकरण पर अपने प्रधान सचिव सबनीस से सलाह की। सबनीस ने इस प्रकरण की जाँच की। ज्ञात हुआ कि तिलक के समर्थकों के कारण ही मिल को नुकसान हुआ है। प्रधान सचिव सबनीस की सलाह पर उन्होंने मिल के अधिग्रहण से साफ मना कर दिया। अब कौवों की यह मंडली सबनीस के पीछे पड़ गई और उन्हें भ्रष्टाचार में लिप्त बताकर उन्हें पदच्युत करने की माँग करने लगी। लेकिन कोई आधार न होने के कारण उन्होंने सबनीस को प्रोन्नत कर राज्य का प्रधान सचिव बना दिया। तिलक और उनके अखबार *केसरी* को शाहूजी महाराज के स्कूलों और छात्रावासों से कोई मतलब नहीं था। यहाँ तक कि उन्होंने शाहूजी महाराज के आरक्षण के आदेश का भी विरोध किया। आरक्षण के आदेश पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा कि इससे राज्य कार्य में बाधा उत्पन्न होगी और अयोग्य लोग शासन में आ जाएँगे। इस समय वह अपने अखबार में ऐसी टिप्पणियाँ करते रहते थे- 'लगता है महाराज को राज्य के कार्य से कोई मतलब नहीं रह गया है।' 'इन निरक्षर और मजदूर लोगों को पढ़ाकर महाराजा पता नहीं कौन-सा महान कार्य करना चाहते हैं।' 'जितना मोर नाचेगा उतना ही मोरनी नाचेगी...' आदि। *केसरी* पत्र हमेशा शाहूजी का अपमान ही करता रहा और इस तरह से बाल गंगाधर तिलक जब तक जीवित रहे शाहूजी महाराज का मुखर विरोध ही करते रहे। चूँकि यह वर्ण व्यवस्था की ही पकी हुई फसल थी कि पढ़ने वाले भी ब्राह्मण, पढ़ाने वाले भी ब्राह्मण, केवल यही नहीं समाचार पत्र छापने वाले, उसे पढ़ने वाले, उसका वाचन करने, उसको सुनने वाले, उसको समझने वाले, उस पर प्रतिक्रिया देने वाले, उसके अनुसार आंदोलन करने वाले और उसे ही सत्य मानने वाले सभी ब्राह्मण थे। इस तरह एक ऐसा काकस बन गया था जिसमें शाहूजी महाराज को केवल अंग्रेजों से ही समर्थन मिलता था। वर्ण व्यवस्था की यह पूरी तरह पकी हुई फसल थी। जिसे ब्राह्मण समाज के लोग 100 साल के बाद आज भी पूरे मजे से काट रहे हैं।

कोल्हापुर की जनता के साथ शाहूजी महाराज

समाज के उद्धार के लिए प्रयास

शाहूजी महाराज के अंदर मानवता और कमजोरों के प्रति सहानुभूति कूट-कूट कर भरी थी, अन्याय उन्हें बर्दाशत नहीं था। देश मे सदियों से पुजारी समाज के द्वारा किया जा रहा अत्याचार उनके हृदय को विदीर्ण करता था। लेकिन वह राजा होकर भी स्वयं को असहाय महसूस करते थे। कारण, पुजारी समाज के द्वारा लोगों के दिलों-दिमाग पर अनियंत्रित कब्जा। पुजारी समाज का आदमी सरेआम अपराध करता था और हमारी आपराधिक न्याय व्यवस्था उसे अत्याचार, अनाचार आदि की खुली छूट देती थी। यहाँ तक कि हमारे समाज की महिलाएँ, जो इस मानसिक गुलामी की सर्वाधिक शिकार थीं वह भी परम्परा के नाम पर अत्याचार का खुलकर समर्थन करती थीं। शाहूजी महाराज के लिए यह गम्भीर चिंतन का विषय था। उन्होंने इस विषय पर सोच-विचार कर यह निष्कर्ष निकाला कि एक ही झटके में सारी बुराइयों को मिटाना सम्भव नहीं हैं।

दुश्मनों से पूरी तरह घिरे ऐसे समाज जिसने अपने शत्रु को ही अपना सबसे बड़ा हितैषी मान रखा हो, को मानवता के अधिकार दिलाना एक ऐसी चुनौती थी जिसे देखकर दुनिया भर के विद्वानों का सिर चकरा जाता है। शाहूजी महाराज यह जानते थे कि ऐसे समाज जिसके दिलो-दिमाग पर शत्रुओं ने अनियंत्रित रूप से कब्जा कर रखा हो उनकी भावनाओं से सीधे टकराना आत्महत्या जैसा ही होगा। सदियों से अत्याचारों को भगवान का प्रसाद मानकर ग्रहण करना और उस पर आनंदित होना जिस समाज के लिए सम्मान का विषय बन चुका हो, उसका सीधा विरोध सम्भव ही नहीं था। लेकिन व्यवस्था का सीधा विरोध न कर इसी प्रक्रिया में सामाजिक शिक्षा का प्रचार-प्रसार और अपने समाज से पुरोहित पैदा करना सम्भव था और उसकी स्वीकार्यता भी उत्पन्न की जा सकती थी कि अपने समाज के पुरोहित भी सारे मांगलिक कार्य करा सकते हैं। इस तरह से धीरे-धीरे हम अपने ध्येय तक पहुँच सकते हैं। हम अपने लोगों के अंदर यह आत्मविश्वास उत्पन्न करा सकते हैं कि जो भी शुभ या अशुभ कार्य ब्राह्मण कराता है वह कोई भी करा सकता है। इससे जहाँ एक ओर ब्राह्मणों और पुरोहितों की तरह का

आत्मविश्वास हमारे लोगों में उत्पन्न होगा वहीं इस समाज के अंदर यह भाव भी जाग्रत होगा कि कोई भी जाति जन्म से श्रेष्ठ नहीं है और सभी लोगों की क्षमता एक समान है। हम भी ब्राह्मणों की बराबरी कर सकते हैं, उन्हीं की तरह से जीवन जी सकते हैं, उनकी श्रेष्ठता धारण करते हैं और राजकीय पद के अधिकारी हैं। यह मान्यता वर्ण व्यवस्था की सर्व प्रचलित मान्यता के उलट थी। और समाज की प्रगति का आधार थी। अपने इसी मिशन के तहत उन्होंने नए सत्यशोधक विद्यालय खुलवाए और इन विद्यालयों में पुरोहित पाठ्यक्रम संचालित करवाए।

सत्यशोधक स्कूलों की स्थापना

यह एक महत्वपूर्ण कदम था। इन विद्यालयों में ब्राह्मण-पुरोहितों के द्वारा कराए जाने वाले सभी तरह के कर्मकांडों का कराने की सम्पूर्ण प्रविधि का प्रशिक्षण दिया जाता था। इसमें जन्म से लेकर मृत्यु तक सम्पन्न होने वाले समस्त संस्कार शामिल थे। इन विद्यालयों के संचालन के छह माह के बाद ही इसके सार्थक परिणाम आने प्रारम्भ हो गए। उस समय के सभी समाचार पत्र, जो प्रत्यक्ष रूप से केवल ब्राह्मण समाज के नियंत्रण में थे या यूँ कहें कि वे उन्हीं की आवाज थे, जिन्होंने इन पुरोहितों का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। यह विरोध यहाँ तक आगे बढ़ा कि मामला न्यायालय तक पहुँच गया। परम्परागत ब्राह्मण समाज के लोगों ने न्यायालय में यह चुनौती दी कि संस्कार कराने का अधिकार केवल ब्राह्मणों या ब्राह्मण पुरोहितों को ही है। माननीय न्यायालय ने प्रकरण की सुनवाई की और फैसला दिया कि संस्कार कराने का अधिकार सभी जातियों के शिक्षित और प्रशिक्षित लोगों को है। इस तरह जब न्यायालय में हार हुई तो पुनः पत्रों ने लिखा कि सत्यशोधक विद्यालय कोई राजकीय विद्यालय नहीं है। इसे राजकीय मान्यता प्राप्त नहीं है। अतः यहाँ से निकले पुरोहित कैसे मान्य हो सकते हैं? शाहूजी महाराज ने जब यह सुना तो उन्होंने सारे सत्यशोधक विद्यालयों को अनुदान देना शुरू कर दिया। इससे ब्राह्मणों का पासा उल्टा पड़ गया। आए थे वह विरोध करने और जिसका विरोध कर रहे थे, उसे पुरस्कार मिल गया। यह प्रज्ञा थी शाहूजी महाराज की? एक ही तीर से दो शिकार हो गए। सत्यशोधक स्कूलों को मान्यता स्वतः प्राप्त हो गई।

आइए, सत्यशोधक आंदोलन के इतिहास पर भी निगाह दौड़ा लेते हैं। महामना जोतिराव फुले के द्वारा 25 सितम्बर, 1875 को सत्यशोधक समाज की स्थापना की गई थी। समाज के पिछड़े वर्गों को सामाजिक रूप से शिक्षित और सशक्त करना इसका प्रथम उद्देश्य था। चूँकि शिक्षा पर ब्राह्मणों का एकाधिकार था और शिक्षा के पूरे पाठ्यक्रम में ब्राह्मणों को ही सर्वश्रेष्ठ बताया गया था। केवल यही

नहीं, वरना इसी झूठी श्रेष्ठता का गुणगान ही पाठ्यक्रम का मुख्य विषय था। सदियों से यही रटते रहने के कारण जनसामान्य यह भूल गया कि वह भी ब्राह्मणों की ही तरह मनुष्य है और पढ़-लिखकर वैसे ही क्षमतावान और प्रतिभाशाली हो सकता है। वह तो यही कथा-कहानी पढ़-पढ़कर अपने आपको जन्मजात अपराधी माने था और उस अपराध से मुक्त होने के लिए ब्राह्मणों को दान देना एकमात्र और सर्वसम्मत मार्ग मानता था। उस समय धर्म की जकड़न इतनी प्रबल थी कि बिना धार्मिक विधि पूर्ण किए कोई संस्कार हो ही नहीं सकता था और न ही उसे कोई मान्यता ही मिलती थी। ऐसी स्थिति में समाज के जो भी लोग शिक्षित हैं उन्हें प्रशिक्षण देकर पुरोहित अथवा पुजारी बनाना, सत्यशोधक आंदोलन का एक प्रमुख उद्देश्य था। ऐसा करने से कई लाभ हुए। संस्कार विधियों को सीखने से ब्राह्मणों की गोपनीयता और संस्कारों पर एकाधिकार खंडित हुआ। सभी लोगों में आत्मविश्वास पैदा हुआ कि वह भी ब्राह्मणों की बराबरी कर सकते हैं। संस्कार विधियों की जानकारी होने से यह ज्ञात हुआ कि इसमें कोई चमत्कार नहीं हैं। यहीं से अंधविश्वास, पाखंड और कुरीतियों के विरोध की शुरुआत होती है। शाहूजी महाराज की प्रेरणा से सत्यशोधक समाज ने काफी प्रगति की। वर्ष 1904 में सत्यशोधक समाज के स्तर से *मराठा* नाम से दैनिक और *दीनबंधु* नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया। यह सत्यशोधक समाज का मुख पत्र था। इस पत्र से यह आंदोलन महाराष्ट्र के सभी जनपदों तक फैला। इस पत्र के कार्यों का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि 9 जून, 1906 के अंक में *दीनबंधु* लिखता है, 'जिस तरह ब्राह्मणों ने अंग्रेजों के विरुद्ध बहिष्कार का बिगुल बजा रखा है उसी तरह मराठा समाज को भी ब्राह्मणों के विरुद्ध हथियार उठाना चाहिए।' यह तथ्य आंदोलन की धार को प्रदर्शित करता है।

भास्कर राव जाधव, अन्नासाहब लट्ठे, गणेश महादेव डोंगरे, हरि भाऊ चह्वाण, विट्ठल विराजी ढोंदे, गोविंदराव विठोजी जाधव और गणपत राव कदम इस आंदोलन के प्रधान प्रवर्तक थे। इनमें भी लट्ठे, जाधव और डोंगरे की तिकड़ी ने गाँव-गाँव घूमकर प्रचार किया। इस तिकड़ी ने इतना काम किया और इनके काम का इतना प्रभाव हुआ कि ब्राह्मण समाज के लोग आपस में बात करते समय इन्हें वात, पित्त और कफ के नाम से सम्बोधित करते थे। इन लोगों का वेतन शाहूजी महाराज राजकीय कोष से करवाते थे।

सत्यशोधक समाज की प्रचार सभाएँ कोल्हापुर के हर बाजार में रविवार को आयोजित की जाती थीं। इन प्रचार सभाओं ने धीरे-धीरे ग्रामीण क्षेत्रों में भी अपनी पकड़ बना ली थी। जनवरी 1911 को परशुराम देसाई की अध्यक्षता में सत्यशोधक

कार्यकारिणी का गठन किया गया। सत्यशोधक समाज के कार्यक्रम में सबसे पहले बैंड-बाजा के साथ जुलूस निकाला जाता था। इसमें संगठन के प्रमुख नेतागण रथ में बैठते थे। सैकड़ों लोग इस रथयात्रा में शामिल होते थे। इन जुलूसों से सत्यशोधक समाज का प्रचार होता था और उसकी ताकत का प्रदर्शन भी होता था। शाम के समय यह जुलूस एक सभा में परिवर्तित हो जाता था और रात्रि में इसी स्थान पर जलसा का कार्यक्रम होता था। जलसे में राजा शाहूजी महाराज और अन्य प्रख्यात महापुरुषों के गौरव गीत गाए जाते थे, जिनमें भगवान बुद्ध, चोखा मेला, नामदेव, देश की प्रथम शिक्षिका माता सावित्रीबाई फुले शामिल थीं। आगे चलकर ये कार्यक्रम इतने सफल हुए कि इनके वार्षिक अधिवेशन होने प्रारम्भ हो गए। *सत्यशोधक समाज* के वार्षिक अधिवेशनों का विवरण निम्नवत है-

पहला	पूना	1911
दूसरा	नासिक	1912
तीसरा	थाना	1913
चौथा	सासवड	1914
पांचवाँ	अहमदनगर	1915
छठवाँ	निपाणी	1916
सातवाँ	अडगाँव	1917
आठवाँ	अकोला	1918
नवाँ	कार्लें	1919

समाज के पहले अधिवेशन में निम्नलिखित निर्णय लिए गए थे-

1. सभी मनुष्य एक ही ईश्वर की संतान हैं, इसलिए सभी एक समान हैं।
2. जैसे अपनी माँ और पिता से मिलने के लिए किसी दलाल की आवश्यकता नहीं होती है वैसे ही सभी मनुष्यों को ईश्वर से मिलने के लिए किसी माध्यम या दलाल की आवश्यकता नहीं है।
3. चूँकि सभी व्यक्ति एक ही ईश्वर से पैदा हुए हैं, अतः सभी मनुष्य बराबर हैं। उनमें कोई नीच और कोई उच्च नहीं है। मैं इसी भावना से व्यवहार करूँगा।
4. मैं ईश्वर भक्ति, पूजा-ध्यान या धार्मिक विधि के समय में किसी दलाल को स्वीकार नहीं करूँगा।

वर्ष 1913 में पहला सत्यशोधक स्कूल कोल्हापुर में खोला गया। धनगर

समाज के प्रज्ञावान आचार्यश्री विट्ठल वीरजी ढोंडे इसके प्रथम प्रधानाचार्य थे। इस स्कूल को लेकर इतना उत्साह था कि समस्त मराठा राज्यों से यहाँ के लिए प्रवेश की लम्बी लाइन लग गई और इसके संचालन के लिए कोई समस्या ही नहीं आई। ऐसा लगता था मानो मराठा समाज इस काम का इंतज़ार कर रहा था। थोड़े ही समय, मात्र तीन महीने के बाद से ही यहाँ से प्रशिक्षित युवक निकलने लगे। इस स्कूल के प्रभाव का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि वर्ष 1913 में जब इसकी स्थापना हुई थी इसी वर्ष में ब्राह्मण भटों के बिना 5161 संस्कार करवाए गए। बड़ौदा राज्य ने वर्ष 1931 में एक आदेश निर्गत कर पुरोहित स्कूल से अधिकृत प्रमाण पत्र किए बिना पुरोहित कार्य सम्पादित करना प्रतिबंधित कर दिया और इसका उल्लंघन होने पर 25 रुपये का अर्थदंड भी लगा दिया। परिवर्तन की यह लहर बहुत तेजी से काम कर रही थी। शाहूजी महाराज की प्रेरणा से आगामी पाँच वर्ष में 46088 धार्मिक विधियाँ सम्पन्न कराई गईं। पूरे महाराष्ट्र और बड़ौदा तथा अन्य संस्थानों से बड़ी संख्या में मराठा युवकों ने इन विद्यालयों में प्रवेश लिया। यह आँकड़ा *सत्यशोधक समाज* के पाँचवें अधिवेशन, अहवाल 1915 पृष्ठ 34-38 से लिया गया है। निश्चित रूप से इसे कम कर कर ही दिखाया या आगे बढ़ाया गया होगा। कारण, कलम दूसरों के हाथों में ही थी। यह आँकड़ा चौंका देने वाला है कि आज से 100 साल पहले हमारे पुरखे इतने जागरूक थे?

'तमाशा' लोक कला का पुनरुद्धार

सत्यशोधक आंदोलन का दूसरा अंग था *तमाशा* नामक लोक कला का पुनरुद्धार। तमाशा मराठा संस्कृति की सर्वप्रचलित लोककला थी। यह बहुजन मराठा समाज के जीवन में रची-बसी कला उनके समाज के वीर रस को प्रदर्शित करती थी। वीर रस की प्रधानता के कारण आगे चलकर अश्लीलता और भौंडेपन ने कब्जा कर लिया था या यूँ कहें, इसके प्रभाव को कम करने के लिए प्रभु समाज ने इसे तिरस्कृत करना शुरू कर दिया था। आज की तारीख में *तमाशा* एक निंदनीय शब्द बन गया है। ठीक वैसे ही जैसे चमार, अहीर आदि जातिसूचक अपमानजनक शब्द। उत्तर प्रदेश में विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न जातियों के अपने-अपने लोकनृत्य, अभी भी देखने को मिल जाते हैं। जैसे धोबी समाज, यादव समाज और चमार समाज में प्रचलित लोकनृत्य जिन्हें उनकी विशेष जाति से अभी भी जाना जाता है। वैसे ही *तमाशा* वहाँ का लोक नृत्य था। कालांतर में विरोधियों के सांस्कृतिक हमले के कारण उसमें अश्लीलता और भौंडापन बहुत ही बारीकी से घुसा दिया गया था। जिससे सांस्कृतिक रूप से इसे नष्ट किया जा सके। शाहूजी महाराज ने इस तमाशा उत्सवों के कलाकारों को प्रोत्साहित कर उसके भौंडेपन

और अश्लीलता पर रोक लगाई और पुलिस प्रबंध कर उपद्रवी ब्राह्मणों को दूर रखने का उपाय किया। लेकिन इतने से काम नहीं बना। उन्होंने जलसा-उत्सवों में भाग लेने के लिए मराठा समाज के लोगों को प्रेरित किया। जलसा-उत्सव कमोबेश उत्तर प्रदेश के लोकनृत्य नौटंकी जैसा ही था। इस जलसा-उत्सव को सांस्कृतिक रूप से मराठा समाज के पुनरुद्धार से जोड़कर समृद्ध करने का पूरा श्रेय शाहूजी महाराज को जाता है। उन्होंने *तमाशा* आयोजन को जलसा उत्सवों में बदल दिया। इस प्रक्रिया में उन्होंने जलसा-उत्सवों की नियमावली बनाई और *तमाशा* उत्सव की हर बुराई को नियम बनाकर दूर किया। जलसा-उत्सव सत्यशोधक समाज के कार्यक्रमों का अभिन्न बन गया था। कार्यक्रम सम्पन्न होने के बाद जलसा-उत्सव का आयोजन जहाँ एक ओर सामाजिक कुरीतियों पर आक्रमण था वहीं यह मराठा समाज के सांस्कृतिक उत्थान का काल था। वर्ण व्यवस्था का विरोध, सामाजिक शिक्षा, अंधविश्वास और पाखंडवाद पर लोकोक्तियों और एकांकी के माध्यम से प्रहार, अस्पृश्यता निर्मूलन, जातिभेद का कड़ा विरोध, पर्दा प्रथा का विरोध, जादू टोना, भूत बाधा, तंत्र-मंत्र जटिल धर्मविधियों का विरोध, पुरोहिताई का विरोध, महिला शिक्षा को प्रोत्साहन, अंतर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन, अंध श्रद्धा का निर्मूलन आदि सामाजिक विषय इन उत्सवों के मुख्य विषय थे।

तमाशा व्यवसाय प्रारम्भ से ही अस्पृश्यों के हाथ में था। इसीलिए तमाशा के प्रति सवर्णमानस अर्थात ब्राह्मणों का नज़रिया सकारात्मक होने का प्रश्न ही नहीं उठता था। लेकिन शाहूजी महाराज ने बहुजन समाज के हर हुनरमंद, निष्ठावान कलाकारों को जलसा से जोड़कर इस विधा को तमाशा का उन्नत स्वरूप बना दिया। जलसों में काम करने वाले सभी बहुजन समाज के लोग ही थे। विदर्भ से लोखंडे भाऊराव, अमरावती के नायगाँव से गुलाबराव सिसोदे पाटिल, हरिभाऊ खड़से, गोविंद नाना फुटाड़े, वर्धा के नागझिरी से खंडेराव जाधव, कसबे, इटके, किसान सीताराम सुतार, करजगाँव से मोतीराम तुकाराम वानखेड़े, सतारा के काला से रामचंद्र घाटगे, येल्लूर के शंकरराव पाटिल, पडली से ज्योतिराव फाल्के, ओट्टूर के भीमराव महामुनि, वातावाड़ी के कवड़े, नासिक के दहा पाटिल, पीपलगाँव बसवंत के गणपत राव मोरे, कोल्हापुर के बाबूराव घाटगे, शंकर राव गागले आदि लोग इन जलसा उत्सवों के प्रमुख कलाकार थे। जब इन उत्सवों में मध्याह्न होता था या जब यह उत्सव अपने उत्कर्ष पर होता था तो उस समय मंच से बहुजन नेताओं का भाषण होता था। यह भाषण प्रबोधन पर होता था। इन प्रबोधनकारों में प्रमुख थे।

केसी ठाकरे, भाऊराव पायगोंडा पाटील, पंढरीनाथ सीताराम पाटील, अन्ना बालाजी लट्ठे, बालचंद रामचंद कोठारी, भास्क राव विठोजी, राव जाधव, केशव राव और बाबू राव यादव।

इस समय यह जलसा और प्रबोधन कार्यक्रम इतना लोकप्रिय हो रहा था कि मराठी क्षेत्र में 30 से अधिक जलसे कार्यरत थे। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नवत है।

क्षेत्र	**कार्यरत जलसे**
सतारा	5
अहमदनगर	6
विदर्भ	6
नासिक	2
सोलापुर	2
पूना	1
बेलगाँव	1
पूर्व खानदेश	1
पश्चिम खानदेश	1
कोल्हापुर	1
योग	**26**

इस समय कम से कम एक जलसा हर जिले में कार्यरत था। लोक शिक्षा का व्रत लिए हुए ये जलसे देश के ग्रामीण भागों में अत्यंत प्रभावशाली ढंग से कार्य कर रहे थे। उनके बोल खेतों-खलिहानों, पहाड़ों, खाइयों में लोगों की जुबान पर आने लगे थे। इनके प्रभाव से लोगों के दिलोदिमाग में नई आकांक्षाओं और नई उम्मीदों का संचार होने लगा था। वे अपनी पुरानी ज़िंदगी को त्यागकर नए आचार-विचार को ग्रहण करने के लिए तत्पर हो चले थे। मराठा क्षेत्र में यह आंदोलन किसी पुनर्जागरण से कम नहीं था। बहुजन, अर्जक और कामकर समाज की लोककला *तमाशा* कभी-भी किताबों के रूप में नहीं आ सकी थी। उसे केवल देखा और सुना जा सकता था लेकिन संग्रह नहीं किया जा सकता था। कारण भी स्पष्ट ही था। जब पढ़ने-लिखने पर प्रतिबंध था तो कला पुस्तकों में आती भी कैसे? लेकिन जलसा का विषय किताबों में भी आ गया था उसे देखा, सुना और पढ़ा जा सकता था। स्पष्ट रूप से शाहूजी महाराज ने इसके लिए धन और साधन की व्यवस्था की। आज से 100 साल पहले यह सब कार्य हुए थे। आश्चर्य होता

है कि हमारे पूर्वज इतने प्रज्ञाशाली और बुद्धिमान थे कि उन्होंने विज्ञान के अत्यंत सीमित संसाधनों से ऐसा आंदोलन चलाया जो भविष्य में हमारी प्रगति का आधार बना। जलसा से सम्बंधित कुछ प्रमुख पुस्तकें निम्न प्रकार थीं-

लेखक	**पुस्तक**
भाऊ राव पाटोले	*जलसा शिक्षक*
भीमराव महामुनि	*विद्या प्रकाश*
पांडुरंग लेंभे	*जलसा प्रकाश*
मोतीराम वानखेड़े	*सत्यपथ प्रदीप*

तुकाराम भोंसले और हरी भाऊ चह्वाण जलसा कविता संग्रह घर का पुरोहित नायगाँवकर का जलसा उस समय का सबसे प्रसिद्ध जलसा हुआ करता था। फुटने मास्टर और हरिभाऊ खड़से इसके नामी कलाकार थे। हरिभाऊ का जलसा देखने के लिए उस समय 20-25 हजार लोगों की भीड़ एकत्र हो जाती थी। सत्यशोधक आंदोलन में बड़ौदा के महाराजा ने भी बहुत सहयोग किया था। बड़ौदा कोल्हापुर के बाद पहला राज्य था जिसने सत्यशोधक विद्यालयों से निकले पुरोहितों को मान्यता दी। इसके बाद तो झड़ी ही लग गई। शाहूजी महाराज के इस काम से समाज को नई दिशा मिली। उसे अपने और पराए का कुछ-कुछ एहसास हुआ। उसे यह एहसास हुआ कि सामाजिक रूप से अशिक्षित व्यक्ति की दशा जंगल में गोवंशीय पशुओं से भी बुरी होती है। जंगल में गोवंशीय पशु भली प्रकार जानता है कि उसका दुश्मन कौन है और उसका दोस्त कौन है। उसे सामाजिक शिक्षा अपने समाज से मिलती है जिसमें उसका जन्म हुआ रहता है। हमारे समाज की दशा इससे अलग है। हमारे समाज को शिक्षा देने का काम भी दुश्मनों के हाथ में रहा है या यूँ कहें शिक्षा के माध्यम से समाज का शत्रु इस कदर हावी हो गया है कि हमें अपने मित्र और शत्रु की पहचान ही पलट गई है। शत्रुओं को अपना मित्र समझकर हमने प्रसन्नता से अपना सर्वस्व दुश्मनों को अर्पित कर रखा है। सत्यशोधक समाज और सत्यशोधक विद्यालयों ने इस अंधी गली को बंद करने का काम किया। स्वतंत्र चिंतन, मानवता और आधुनिकता का जो भी प्रकाश दिखाई पड़ रहा है वह सत्यशोधक समाज की ही देन है।

पुरोहितों द्वारा कड़ा विरोध उनकी हार

जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है कि इन विद्यालयों के संचालन के छह माह बाद ही पुरोहितों ने विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। मामला न्यायालय में पहुँचा, न्यायालय ने पुरोहितों की करारी हार हुई। पुरोहित समाज इतना धूर्त और मक्कार

था कि उसने प्रशासनिक स्तर पर विरोध करना शुरू कर दिया ठीक वैसे ही जैसे उसने मंडल कमीशन का विरोध किया था। बिना किसी आधार के केवल शोर मचाकर कि समाज को नहीं बाँटने देंगे। सब पर हम ही कब्जा किए रखेंगे किसी और को कुछ भी नहीं लेने देंगे। प्रशासनिक स्तर पर इन पुरोहितों ने ऐसा ही शोर मचाकर सत्यशोधक जलसों का विरोध किया। चूँकि नीचे के प्रशासनिक पदों पर यही लोग काबिज थे, इसलिए आसानी से षड्यंत्र कर डाला। बिल्कुल वैसे ही जैसे मंडल कमीशन पर अंतरिम रोक लगवाने में यह सफल हो गए थे। इनके पत्रों ने गोपनीय ढंग से मामलतदारों को जलसा उत्सवों का विरोध करने का निर्देश दिया। और स्वयं मराठा लोगों को ही भड़काकर या खरीदकर जलसा उत्सवों में बवाल कराना शुरू कर दिया। फिर सुनियोजित षड्यंत्र के क्रम में मामलतदारों ने धारा 144 लागू कर इन उत्सवों पर रोक लगाने का प्रयास किया। कराड़ में ऐसे ही एक जलसा उत्सव को रोकने के लिए बिना किसी कारण के निषेधाज्ञा लागू की और जलसे की कार्यवाही रोकी। इस रोक से लोग उत्तेजित हो गए और पुलिस मजिस्ट्रेट के सामने ही धरने पर बैठ गए। उनकी भारी संख्या को देखकर मामलतदार घबरा गया और चुपचाप वापस चला गया। इस तरह के बहुत से मामले सतारा से लेकर विदर्भ तक हुए। इनमें फौजदारी के बहुत से मुकदमे हुए जिनमें शाहूजी महाराज ने व्यक्तिगत रुचि लेकर मराठा समाज में ही वकील पैदा किए और इनकी पैरवी कर न्याय दिलाया। वास्तव में सत्यशोधक आंदोलन भारतीय इतिहास का वह स्वर्णिम पृष्ठ है, जिसे देश की मीडिया में बैठे धूर्त समाज के लोगों ने वैसे ही झुठलाने, रबर से जबरन मिटाने का प्रयास किया है जैसे आज के समय में मायावती के द्वारा किए गए कामों को लेकर किया जा रहा है। बौद्ध स्मारकों के पुनरुद्धार को मिटाने का आज भी प्रयास जारी है।

सर नेम का उपहार

यह कहते हुए बहुत कष्ट होता है कि मात्र जाति के नाम पर घृणा, अमानवीयता और अपमानजनक व्यवहार उस समय ही नहीं, वरन आज भी हमारी हिंदू संस्कृति की पहचान है। इसी कारण यूरोपीय देश हमें जनजाति से अधिक नहीं मानते हैं। आज भी यदि किसी क्षत्रिय या ब्राह्मण को यह ज्ञात जो जाए कि सामने वाला चमार या किसी पिछड़ी जाति से सम्बंधित है तो उसका व्यवहार बदल जाता है या तो वह अवॉयड करने लगता है या बात करने का अंदाज बदल जाता है अथवा बातचीत बंद कर देता है। उसका बस चले तो वह उसे भगा दे या अपमानित कर चुप करा दे। यदि यह न कर पाए तो स्वयं हट जाए। अमानवीयता की ऐसी पराकाष्ठा पूरे विश्व में और कहीं नहीं मिलेगी। जब आज यह स्थिति है तो 120 साल पहले क्या स्थिति रही होगी। इसका अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसे में शाहूजी महाराज ने एक नई तरकीब निकाली। उन्होंने ऐसे अस्पृश्य और पिछड़े वर्ग लोगख जो हुनरमंद थे और किसी न किसी काम में आगे बढ़े हुए थे, को यह अनुमति दी कि वह ब्राह्मणों और क्षत्रियों के सरनेम का प्रयोग करें। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इसके पहले इसकी अनुमति नहीं थी। हमारी देशी भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) और अपराध प्रक्रिया संहिता (सीआरपीसी) इसी जाति व्यवस्था पर ही आधारित थी। यह करना बहुत बड़ा अपराध था। अब यदि उसमें पहचान न हो पाए तो यह व्यवस्था ही भरभराकर ध्वस्त हो जाएगी। अनुमति का प्रश्न ही नहीं उठता था। *दायभाग* और *मिताक्षरा* में साफ-साफ लिखा था कि सभी लोग केवल अपने लिए निर्धारित काम ही करेंगे यही वर्णाश्रम धर्म था और इसकी स्थापना करना पुरोहित और शासक का प्रधान कर्त्तव्य होता था। ऐसे में शाहूजी महाराज ने बिना कोई आदेश किए ही यह काम करवा डाला और वर्ण व्यवस्था की बेड़ियाँ तोड़कर बहुजनों को आज़ाद कर दिया। आध्यात्मिक सत्ताधारी ब्राह्मणों और राजपूतों को पता ही नहीं चला कि यह काम कब हो गया। जैसे ही उन्हें यह ज्ञात हुआ उन्होंने कड़ा प्रतिरोध किया लेकिन अंग्रेजों द्वारा संचालित समान सिविल कोड और क्रिमिनल कोड के चलते वह

कानूनी रूप से कुछ बिगाड़ नहीं पाए। पिछड़े और अस्पृश्य समाज से कला के विभिन्न क्षेत्रों में जो भी लोग आगे आ रहे थे उनको शाहूजी महाराज ने अपनी इच्छा और सुविधानुसार उपनाम लगाने की छूट दे रखी थी। इसमें प्रमुख उपनाम थे सूर्यवंशी, गायकवाड़, जाधव, वानखेड़े, शिंदे, मोरे, कदम, पवार, सावंत, लोखंडे, शिर्के, ब्राह्मण, माने आदि। यही कारण है कि पंडित, गुरु, आचार्य, साठे, खांडेकर, भालेरावो, शास्त्री जैसे उपनाम आज भी अस्पृश्यों में पाए जाते हैं। इस कवायद के पीछे शाहूजी महाराज का ही दिमाग था। आज हम देखते हैं कि पिछड़े वर्गों में बहुत-सी जातियाँ और सरनेम नाम हैं। इसके पीछे यही कारण है कि जीवन जीने के लिए यह रास्ता अपनाया गया था। जिससे समाज ज़िंदा रह सके। इस काल में देश में औद्योगीकरण हो रहा था। शहरीकरण के कारण अब जीवनयापन के लिए गाँव के अतिरिक्त शहरों से सम्भावनाएँ सामने आ रही थीं। अपने गाँव या शहर के बाहर कौन जानता है कि कौन-किस जाति का है। इसी कारण देश में ब्राह्मण वर्ग ने अंग्रजों और विकास के हर साधन का विरोध किया। विकास और शिक्षा दोनों ही वर्ण व्यवस्था को कमजोर करते थे। मात्र अंग्रेजों ने वर्ण व्यवस्था तोड़ने का काम किया। उनके पहले के शासकों ने वर्ण व्यवस्था को नहीं छेड़ा तो उन्होंने भी विदेशी आक्रांताओं को नहीं छेड़ा। जैसे मुसलमान और अफगान शासकों का विरोध कभी भी ब्राह्मणों ने नहीं किया। विरोध करना तो दूर उनसे वैवाहिक सम्बंध बनाकर अपना कब्जा पक्का कर लिया। जाति छिपाना उस समय की मजबूरी थी जिसने सम्मानजनक जीवन जीने का एक रास्ता दिखाया। यह कोई झूठ या मक्कारी नहीं थी वरन वर्ण व्यवस्था से उपजा एक रास्ता था जो जाति व्यवस्था की मानसिक बेड़ियों से जकड़े लोगों के लिए एक मार्ग के समान था और इस मार्ग के प्रणेता थे- शाहूजी महाराज।

हमारे बहुत से पाठक अर्थात पढ़ने वाले लोग यह कहेंगे कि एक बुराई को समाप्त करने के लिए दूसरी बुराई और झूठ का सहारा लेना कहाँ तक उचित है। यहाँ हमें इस पर विचार करना है कि झूठ और सच का विचार तो तब आता है जब हमारा पेट भरा हो। आधा पेट खाना और साथ में मुफ्त अपमान की दशा में सारे सिद्धांत फेल हो जाते हैं। अपनी आँखों के सामने भूख से बिलखते बच्चों को देखकर सारे सिद्धांत ईश्वरीय सत्ता में विलीन हो जाते हैं। अपने जीवित रहने के लिए शाहूजी महाराज का उपकार उनका समाज कभी नहीं भूलेगा।

अपना धार्मिक संस्कार स्वयं करने के लिए कमजोर वर्गों का आह्वान

दिनांक 19 अप्रैल, 1919 को कानपुर में आयोजित कुर्मी समाज सम्मेलन के समारोह में बालते हुए शाहूजी महाराज ने अपने समाज से पुरोहित पैदा करने का आह्वान करते हुए अपने धार्मिक कर्मकांड स्वयं सम्पादित करने पर बल दिया। समारोह के अपने अध्यक्षीय सम्बोधन में उन्होंने कहा कि उनके राज्य में सत्यशोधक विद्यालयों की स्थापना की गई है। इन विद्यालयों में ब्राह्मण पुरोहितों के द्वारा कराए जाने वाले सभी तरह के कर्मकांडों को कराने की सम्पूर्ण प्रविधि का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसमें जन्म से लेकर मृत्यु तक सम्पन्न होने वाले समस्त संस्कार शामिल रहते हैं। इन विद्यालयों के संचालन के छह माह के बाद ही इसके सार्थक परिणाम आने प्रारम्भ हो गए।

हमारा समाज सदियों से शिक्षा व्यवस्था से दूर रहा है। शिक्षा व्यवस्था पर मात्र ब्राह्मणों का एकाधिकार रहा है और इस कारण से ब्राह्मण समाज के द्वारा जो कुछ भी धर्म ग्रंथों, पाठ्य-पुस्तकों में लिख दिया गया। बस उसे ही सही मानने की हम सभी की बाध्यता बन गई। दुर्भाग्य से इन अधिकारों का ब्राह्मण समाज ने बहुत ही बेरहमी से फायदा उठाया। धर्म ग्रंथों और पाठ्य-पुस्तकों में अपने समाज को बहुत ही धूर्तता से श्रेष्ठ बताया और अपने ही देश के दूसरे समाजों को निम्न श्रेणी का बताया। केवल यही नहीं, वरन इसी झूठी श्रेष्ठता का गुणगान को पाठ्यक्रम का मुख्य विषय बना दिया गया था। यहाँ तक कि समाज के एक वर्ग को कानून बनाकर इतना पतित बना दिया कि उसे स्पर्श करना भी पाप माना जाने लगा। वर्ण व्यवस्था के तहत चारों वर्णों के कार्यों का विभाजन भी कर दिया गया। इस कार्य विभाजन में बहुत ही चालाकी से अपने लिए पठन-पाठन और शिक्षा का कार्य, क्षत्रियों के लिए पठन और युद्धाभ्यास, वैश्यों के लिए पठन और व्यापार और इन तीनों से इतर शेष समाज के लिए कोई व्यवस्था नहीं उन्हें केवल ऊपर लिखित तीनों वर्णों की दया पर छोड़ दिया गया। मजबूरी में शेष वर्ण अन्य व्यवसाय खेती, दुग्ध पालन, मछली पालन, कुम्हारकला, बर्तन बनाना एवं अन्य कृषि से जुड़े

व्यवसायों की ओर जाने को बाध्य हुआ। यह वर्ग सदियों से कानूनन शिक्षा से वंचित किए जाने के कारण यह भूल गया कि मानव के मानव होने के कारण भी कुछ अधिकार होते हैं। शिक्षा व्यवस्था से कोई मतलब न होने के कारण उसे केवल उतना ही समझ में आता जितना पढ़ा-लिखा पुरोहित ब्राह्मण वर्ग उसे बताया करता। समाज के पिछड़े वर्गों को सामाजिक रूप से शिक्षित करना और सामाजिक रूप से सशक्त करना इन सत्यशोधक विद्यालयों का प्रथम उद्देश्य था। चूँकि शिक्षा पर ब्राह्मणों का एकाधिकार था और शिक्षा के पूरे पाठ्यक्रम में ब्राह्मणों को ही सर्वश्रेष्ठ बताया गया था। सदियों से यही रटते रहने के कारण जनसामान्य को याद ही नहीं रहा कि वह भी ब्राह्मण की ही तरह मनुष्य है और पढ़-लिखकर वैसे ही क्षमतावान और प्रतिभाशाली हो सकता है। वह तो यही कथा कहानी पढ़-पढ़कर अपने आपको जन्मजात अपराधी माने हुए था और उस अपराध से मुक्त होने के लिए ब्राह्मण-पुरोहितों का आशीर्वाद आवश्यक था। यह तथ्य जनमानस में इस कदर बैठ गया था कि पुरोहित के बिना भी कोई धार्मिक कर्मकांड हो सकता है यह सोच पाना मुश्किल था। ऐसी दशा में पुरोहित समाज का सीधा विरोध सम्भव ही नहीं था। हाँ, यह अवश्य सम्भव था कि पिछड़े समाज को प्रशिक्षण देकर पुरोहित पैदा किए जाएँ। पिछड़े वर्गों के पुरोहितों से धार्मिक कर्मकांडों को सम्पन्न कराया जाए। इससे जहाँ एक ओर ब्राह्मण पुरोहित समाज का वर्चस्व कम होगा वहीं पिछड़े समाज के लोगों का मनोबल बढ़ेगा और यह भ्रम टूटेगा कि पुरोहितों का कार्य केवल ब्राह्मण ही कर सकते हैं। इस तरह से बिना विरोध किए पिछड़ा और अस्पृश्य समाज आगे बढ़ सकता है। इसी उद्देश्य को लेकर महामना जोतिराव फुले के द्वारा 25 सितम्बर, 1875 को सत्यशोधक समाज की स्थापना की गई थी। समाज के पिछड़े वर्गों को सामाजिक रूप से शिक्षित करना और सामाजिक रूप से सशक्त करना इसका प्रथम उद्देश्य था। उस समय धर्म की जकड़न इतनी प्रबल थी कि बिना धार्मिक विधि पूर्ण किए कोई संस्कार सम्पन्न ही नहीं हो सकता था और न ही उसे कोई मान्यता ही मिलती। ऐसी स्थिति में समाज के जो भी लोग शिक्षित हैं उन्हें प्रशिक्षण देकर पुरोहित अथवा पुजारी बनाया जाए, ऐसा करने से कई लाभ हुए। संस्कार विधियों को सीखने से ब्राह्मणों की गोपनीयता और सस्कारों पर एकाधिकार खंडित हुआ। सभी लोगों में आत्मविश्वास पैदा हुआ कि वह भी ब्राह्मणों की बराबरी कर सकते हैं। संस्कार विधियों की जानकारी होने से यह ज्ञात हुआ कि इसमें कोई चमत्कार नहीं है। यही से अंध विश्वास, पाखंड और कुरीतियों के विरोध की शुरुआत होती है। शाहूजी महाराज की प्रेरणा से सत्यशोधक समाज ने काफी प्रगति की।

यह हमारे समाज का दुर्भाग्य रहा है कि उत्तर भारत में सत्यशोधक का स्थान आर्य समाज ने ले लिया और उसका नेतृत्व उन्हीं लोगों के हाथ में रहा जो शोषक वर्ग से थे। उनका उद्देश्य मात्र हिंदू समाज में कुछ सुधार करना था जिससे शाहूजी महाराज और बाबा साहब के आंदोलन को बढ़त बनाने से रोका जा सके और यह दिखाया जा सके कि वह लोग दूसरे थे जो अस्पृश्यता को मानते थे। अब नए युग में भेदभाव हटा दिया गया है और सभी बराबर हैं। हिंदू समाज सर्वश्रेष्ठ समाज है, सर्वश्रेष्ठ संस्कृति है। इससे उत्तम संस्कृति और कोई नहीं है।

शाहूजी महाराज का यह स्पष्ट मानना था कि जब तक पिछड़े समाजों में पुरोहित नहीं पैदा होंगे। धर्म की जकड़न कमजोर नहीं पड़ेगी। वर्ष 1913 में पहला सत्यशोधक स्कूल कोल्हापुर में खोला गया। धनगर समाज के प्रज्ञावान आचार्य श्री विट्ठल वीरजी ढोंडे इसके प्रथम प्रधानाचार्य थे। इस स्कूल को लेकर इतना उत्साह था कि समस्त मराठा राज्यों से यहाँ प्रवेश के लिए लम्बी लाइन लग गई और इसके संचालन के लिए कोई समस्या ही नहीं आई। ऐसा लगता था मानो मराठा समाज इस काम का इंतज़ार कर रहा था। थोड़े ही समय मात्र तीन महीने के बाद से ही यहाँ से प्रशिक्षित युवक निकलने लगे। इस स्कूल के प्रभाव का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि वर्ष 1913 में जब इसकी स्थापना हुई थी इसी वर्ष में ब्राह्मण पुरोहितों के बिना 5161 धार्मिक संस्कार करवाए गए। बड़ौदा राज्य ने वर्ष 1913 में एक आदेश निर्गत कर पुरोहित स्कूल से अधिकृत प्रमाण पत्र किए बिना पुरोहित कार्य सम्पादित करना प्रतिबंधित कर दिया और इसका उल्लंघन होने पर 25 रुपये का अर्थदंड भी लगा दिया। परिवर्तन की यह लहर बहुत तेजी से काम कर रही थी। शाहूजी महाराज की प्रेरणा से आगामी पाँच वर्ष में 46088 धार्मिक विधियाँ सम्पन्न कराई गई। पूरे महाराष्ट्र और बड़ौदा तथा अन्य संस्थानों से बड़ी संख्या में मराठा युवक इन विद्यालयों में प्रवेश लिए। यह आँकड़ा सत्यशोधक पाँचवें अधिवेशन, अहवाल, 1915 पृष्ठ 34-38 से लिया गया हैं। निश्चित रूप से इसे कम कर ही दिखाया या आगे बढ़ाया गया होगा, कारण कलम दूसरों के हाथों में ही थी। यह आंकड़ा चौंका देने वाला है। आज से 100 साल पहले हमारे पुरखे इतने जागरूक थे?

इस आंदोलन का दूसरा अंग था तमाशा नामक लोक कला का पुनरुद्धार। तमाशा मराठा संस्कृति की सर्व प्रचलित लोककला थी। यह बहुजन मराठा समाज के जीवन में रची-बसी कला उनके समाज के वीररस को प्रदर्शित करती थी। वीर रस की प्रधानता के कारण इसे आगे चलकर अश्लीलता और भौंड़ेपन ने कब्जा कर लिया था। या यूँ कहें इसके प्रभाव को कम करने के लिए प्रभु समाज ने इसे

तिरस्कृत करना शुरू कर दिया था। आज की तारीख में तमाशा एक निंदनीय शब्द बन गया है ठीक वैसे ही जैसे चमार, अहीर, गड़ेरिया, नाई, धोबी आदि जाति सूचक अपमानजनक शब्द। उत्तर प्रदेश में विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न जातियों के अपने-अपने लोकनृत्य अभी-भी देखने को मिल जाते हैं। जैसे धोबी समाज, यादव समाज और चमार समाज में प्रचलित लोक कला। आश्चर्य होता है कि 100 साल पहले विज्ञान के अत्यंत सीमित संसाधनों से हमारे पूर्वजों ने ऐसा आंदोलन चलाया। जो आगे चलकर हमारी प्रगति का आधार बना।

सत्यशोधक आंदोलन में बड़ौदा के महाराजा ने भी बहुत सहयोग किया बड़ौदा कोल्हापुर के बाद पहला राज्य था, जिसने सत्यशोधक विद्यालयों से निकले पुरोहितों को मान्यता दी। इसके बाद तो लाइन ही लग गई। शाहूजी महाराज के इस काम से समाज को नई दिशा मिली उसे अपने और पराए का कुछ एहसास हुआ। उसे यह एहसास हुआ कि सामाजिक रूप से अशिक्षित व्यक्ति की दशा गोवंशीय पशुओं से भी बुरी होती है। जंगल में गोवंशीय पशु भली प्रकार जानता है कि उसका दुश्मन कौन है और उसका दोस्त कौन है। उसे सामाजिक शिक्षा अपने समाज से मिलती है जिसमें उसका जन्म हुआ रहता है।

पृथक निर्वाचक मंडल के लिए संघर्ष

राजनीति शास्त्र में प्रतिनिधित्व की एक व्यवस्था है कि जब समाज का कोई अंग जनसंख्या में इतना कम होता है कि साधारण निर्वाचन से उसके प्रतिनिधियों का चुनकर आ पाना सम्भव नहीं होता है या आबादी का ऐसा हिस्सा जहाँ साक्षरता नगण्य हो वहाँ समाज के उस हिस्से को प्रतिनिधित्व देने के लिए उसे पृथक निर्वाचक मंडल देकर दो वोटों का अधिकार दिया जाता है। जैसे अपने देश में मुसलमान, अछूत और पिछड़ी जातियों में साक्षरता तत्समय नगण्य थी। अपने देश में यह तथ्य सर्वप्रथम तत्कालीन मुस्लिम प्रतिनिधियों ने ब्रिटिश सरकार के समक्ष रखा था कि ऐसी दशा में मुसलमान प्रतिनिधि या विधायक सामान्य निर्वाचन से कभी-भी लोकसभा में नहीं पहुँच पाएँगे। 80 प्रतिशत का प्रचंड बहुमत उसे दबा देगा। इस तरह समाज के इस हिस्से की आवाज विधानमंडल तक पहुँच ही नहीं पाएगी। इस तथ्य को मुस्लिम प्रतिनिधियों ने सरकार के समक्ष रखा। तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड मिंटो ने तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री लॉर्ड मोले की सलाह पर वर्ष 1909 में मोर्ले मिंटो सुधार पारित किया, जिसमें मुसलमानों की इस माँग को मानते हुए उन्हें पृथक निर्वाचन मंडल का अधिकार दिया गया था। इस व्यवस्था के तहत मुसलमानों के ऐसे निर्वाचक मंडल या आज की भाषा में कहें तो विधानसभा क्षेत्र या लोकसभा क्षेत्र स्थापित किए गए, जहाँ उनकी संख्या मिलाकर एक निर्वाचन क्षेत्र, जनसंख्या के हिसाब से तैयार हो जाता था। इसे ही पृथक निर्वाचन मंडल का नाम दिया गया था। इसमें मुसलमान उम्मीदवार ही खड़े हो सकते थे और मुसलमान जनता ही मुसलमान प्रतिनिधि का चुनाव करती। ऐसी दशा में अन्य समाज के लोग उन्हें बरगला नहीं पाते थे और उनके समाज का सही प्रतिनिधि चुनकर आता था। वह विधानसभा में अपने समाज की समस्याओं को रखता था जो इस व्यवस्था का उद्देश्य था कि सभी समाजों की आवाज विधानसभा तक पहुँचे। इन सुधारों से मुसलमानों में काफी जागृति आई और उन्हें काफी सहूलियतें मिली। शाहूजी महाराज इस बात से अच्छी तरह वाकिफ थे कि अछूतों और मराठों को भी पृथक निर्वाचन मंडल का अधिकार मिलना चाहिए।

अछूत, समाज के ऐसे हिस्से हैं, जिन्हें आज भी मनुष्य नहीं माना जाता। आज भी गाँवों में इनकी स्थिति जानवरों से भी बदतर है और ओबीसी समाज में सामाजिक जागरुकता इस तरह नगण्य हैं कि उन्हें अपने मित्र और शत्रु की पहचान ही नहीं है। इस तरह की माँग शाहूजी महाराज के द्वारा ब्रिटिश सरकार के समक्ष कई बार की जा चुकी थी। इसी सिलसिले में 12 नवम्बर, 1917 को उन्होंने मर मोंटेग्यू से मुलाकात की और साफ-साफ कहा कि भारत में एक समूह ऐसा है, जिसे मनुष्य की श्रेणी में ही नहीं रखा जाता है। उन्हें छूना निषिद्ध है और पुरोहित समाज पर उनकी परछाई पड़ना भी अपराध है। यह समाज इस तरह का है कि उसे सार्वजनिक स्थानों पर पानी तक पीने का अधिकार नहीं है। यहाँ तक कि इनकी स्थिति जानवरों से भी खराब है। अतः अछूतों को मुसलमानों की भाँति पृथक निर्वाचन का अधिकार मिलना चाहिए। उन्होंने मराठों के लिए भी पृथक निर्वाचन मंडल की और कहा कि यद्यपि इनकी संख्या अधिक है फिर भी इनमें शिक्षा का स्तर शून्य है। इन्हें अपने शत्रुओं की पहचान ही नहीं हैं। ऐसे में यदि इन्हें पृथक निर्वाचन मंडल नहीं दिया जाता है तो वह ब्राह्मणों की दया पर ही निर्भर रह जाएँगे, जो कि *मनुस्मृति* लागू करने के लिए प्रतिबद्ध है। इस तरह से पृथक निर्वाचक व्यवस्था नहीं लागू होने से बहुसंख्यक जनता पुनः पेशवाई की स्थिति में पहुँच जाएगी। मोंटेग्यू के भारत भ्रमण से कांग्रेस के कान खड़े हो गए उन्हें लगने लगा कि जैसे ब्रिटिशों ने अपने देश में सार्वभौम मताधिकार लागू कर दिया है वैसे ही यह भारत में भी सार्वभौम मताधिकार लागू कर देंगे, ऐसे में ब्राह्मण अल्पसंख्यक हो जाएँगे। अतः पलटी मारते हुए उन्होंने बहुजनों की भाषा बोलनी शुरू कर दी और कहा कि कांग्रेस सम्पूर्ण भारत का प्रतिनिधित्व करती है।

27 दिसम्बर, 1917 की खामगाँव की परिषद में शाहूजी महाराज ने कहा कि वर्तमान में देश का मूल आधार उसकी जाति व्यवस्था है उसको नज़रअंदाज करते हुए यदि स्वराज मिलता है तो मुट्ठी भर लोगों के हाथ में सत्ता का अंतरण हो जाएगा, जो मानवता के लिए विनाशकारी होगा। अतः कम से कम 10 साल तक हमें जातिवार निर्वाचक मंडल और जातिवार प्रतिनिधि चुनने का हक़ मिलना चाहिए। यदि ऐसा नहीं हुआ तो बिहार में जैसा हुआ वैसा ही पूरे देश में हो जाएगा। बिहार में दरभंगा के राजा ने इस बात को स्वीकार कर लिया कि प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य नहीं होगी जिसकी इच्छा न हो वह पढ़ाई न करें। ऐसे में बहुजन समाज के लोगों को स्कूलों में भगा दिया जाता था यह दिखाकर कि ये मूर्ख हैं और पढ़ना नहीं चाहते। अतः जातियों में बुरी तरह से बिखरे समाज के लिए जाति के आधार पर प्रतिनिधित्व का अधिकार कम से कम 10 साल तक देना

होगा।

महाराजा शाहू ने लार्ड विलिंगडन को पत्र लिखा कि मेरे साक्षात्कार में मुझे दोबारा इस बात पर जोर देना है कि हमारे देश की स्थिति अन्य देशों से बिलकुल अलग है। इसकी तुलना ब्रिटेन क्या, किसी भी देश से नहीं हो सकती है। हमारा देश अंतर्विवाही जनसमूहों में बँटा है, जिसे जाति कहते हैं। एक जाति दूसरी जाति से खानपान और वैवाहिक सम्बंधों में बिलकुल अलग हैं। इन जातियों के अपने अलग-अलग हित हैं। यह एक-दूसरे से पृथक तो हैं ही इनमें आपस में खान-पान को लेकर भी प्रतिबंध है। एक जाति का छुआ हुआ भोजन दूसरी जाति के लोग स्वीकार नहीं करते, वैवाहिक सम्बंध तो बहुत दूर है। यहाँ तक कि सनातन नियम कानूनों के अनुसार इन्हें पढ़ने-लिखने की भी मनाही है। इनमें शिक्षा का स्तर दो प्रतिशत से अधिक नहीं हैं। यह सदियों से सामाजिक, शैक्षणिक, राजनैतिक और प्रशासनिक रूप से देश के अल्पसंख्यक ब्राह्मणों के नियंत्रण में रही है जिन्होंने इन जातियों पर बहुत ही कड़े अमानवीय और अमानुषिक प्रतिबंध लगा रखे हैं और इन जातियों को अलग-अलग कर इनका शारीरिक, मानसिक, नैतिक राजनैतिक शोषण ही पुरोहित समाज का उद्देश्य रहा है। अतः देश के लिए बन रहे कानून में मराठा और अस्पृश्य वर्ग के लिए अलग से निर्वाचन क्षेत्र मिलना ही चाहिए नहीं तो स्वराज का कोई मतलब नहीं होगा और देश का बहुसंख्यक समाज ब्राह्मणों के अत्याचार से कभी मुक्त नहीं हो पाएगा। 16 अक्टूबर तो लॉर्ड मोंटेग्यू ने महाराज शाहू को पत्र लिखकर शुक्रिया अदा किया और आश्वासन भी दिया कि समय आने पर आपके विचारों को अवश्य ही स्थान दिया जाएगा। इससे पहले सर मोंटेग्यू स्वतंत्र और पृथक निर्वाचन क्षेत्र में प्रबल विरोधी थे, लेकिन महाराज के पत्रों से उनका विचार बदला और उन्होंने स्वीकार किया कि भारतीय परिस्थितियों में जातिवार पृथक निर्वाचक मंडल का अधिकार मिलना ही चाहिए। उन्होंने पत्र में शाहूजी महाराज को लिखा कि उन्हें अपनी बात रखने का अवसर भी सदन के सम्मुख दिया जाएगा। 23 जून, 1919 को महाराज शाहू ने राज्यपाल को पत्र लिखा था कि बहुजनों और अस्पृश्यों को ब्राह्मणी दलदल से निकालना मेरे जीवन का प्रमुख उद्देश्य है। भारत की जाति आधारित अमानवीय और अत्याचारी वर्ण व्यवस्था के चलते विभिन्न अंतर्विवाही समूहों को, जिन्हें हम जाति के नाम से जानते हैं, पृथक निर्वाचक मंडल का अधिकार न देना मानवता की हत्या होगी। यदि ऐसा हुआ तो चतुर्वर्णी व्यवस्था के संस्थापक ब्राह्मण समाज के हाथ में सारे अधिकार चले जाएँगे जो *मनुस्मृति* के नियमों को और भी सख्ती से लागू करेंगे। यह भारत

के बहुजनों पर बहुत बड़ा अत्याचार होगा। मैं समझता हूँ कि ब्रिटिश सरकार ने जिस तरह से ब्रिटेन में सार्वभौम मताधिकार लागू करके मानवता की सेवा की है। वैसे ही भारत की विशेष स्थिति को देखते हुए जातियों में क्रूरतम ढंग से बँटे इस समाज को जातिवार पृथक निर्वाचक मंडल का अधिकार देंगे। देश में अधिकतर या यूँ कहें सभी ब्राह्मणेतर लोग निर्धन, अशिक्षित और सामाजिक शैक्षिक रूप से कमजोर थे, उन्हें मत देने का भी अधिकार नहीं था। तत्समय ब्राह्मण ही मजबूत थे और वही सशक्त थे। उन्हें ही वोट देने का अधिकार था। महाराजा शाहू के प्रयासों से मोंटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों में मराठों को सात और अस्पृश्यों को दो आरक्षित सीटों की व्यवस्था की गई। लेकिन पृथक निर्वाचन मंडल की माँग को स्वीकार नहीं किया। यह तो सबको विदित ही है इसी प्रकरण पर गाँधीजी की बात जब नहीं सुनी गई तो वह द्वितीय गोलमेज कॉन्फ्रेंस को बीच में ही छोड़कर भारत वापस चले आए थे। भारत आने के बाद क्या हुआ यह हम सबको पता है। अछूतों को पृथक निर्वाचन मंडल के विरोध में उन्होंने यरवदा जेल में ही आमरण अनशन शुरू कर दिया। यहाँ यह बात गौर करने लायक है कि महात्मा गाँधी ने अछूतों के पृथक निर्वाचक मंडल का इतना विरोध क्यों किया? स्पष्ट रूप से महात्मा गाँधी नहीं चाहते थे कि अछूतों में अपने अधिकारों के प्रति जागरुकता बढ़े। महात्मा गाँधी की यही इच्छा थी कि अछूत जैसे ब्राह्मण भक्त हैं वैसे ही भक्त बने रहें और अस्पृश्यता की अमानुषिक चक्की में पिसते रहें। उन्हें भय था कि यदि यह वर्ग जागरूक हो गया तो सवर्ण अर्थात हिंदू अल्पसंख्यक हो जाएगा। बाबासाहब ने अपने 10 साल की मेहनत से जो उपलब्धि अर्जित की थी, उसे महात्मा गाँधी ने ज़िद करके बर्बाद कर दिया। गाँधीजी के आमरण अनशन पर बैठ जाने से चारों तरफ से यह दबाव पड़ने लगा कि जैसे भी हो गाँधीजी का अनशन समाप्त कराया जाए। यह एक अनैतिक दबाव था जो यह कहता था कि बाबासाहब फाँसी पर झूल जाएँ। अपने समाज की और मानवता की हत्या कर दें। बाबा साहब इस समय अकेले पड़ गए। कल्पना कीजिए कि इस समय तक शाहूजी महाराज यदि जीवित होते तो कहानी कुछ और होती। बाबा साहब इतने अकेले न पड़ते। लेकिन उस समय शाहूजी महाराज नहीं थे बाबासाहब के समर्थन के लिए अंत में हुआ भी यही कि जान-बूझकर बाबा साहब को अपने समाज और मानवता का गला अपने ही हाथों से मजबूरन घोंटना पड़ा और पृथक निर्वाचक मंडल के स्थान पर 149 सीटों से संतोष करना पड़ा। एक बार फिर मानवता हार गई और वर्ण व्यवस्था, परम्परा से चली आ रही अपनी निकृष्टता और निर्लज्जतापूर्ण अड़ियलपन से मानवता की हत्या कर जीत गई। यदि शाहूजी

महाराज 15 वर्ष और जीवित रहते तो आज देश की दशा ही अलग होती। उनके रहते इस तरह का अड़ियलपन भी कांग्रेस के काम न आता। गाँधीजी के साथ पूरा पुरोहित समाज अपनी पूरी मीडिया के साथ अपनी जन्मजात धूर्तता, मक्कारी, धृष्ठता और निर्लज्जता के साथ मानवता की हत्या में लगा था और दूसरी ओर, बाबा साहब अकेले मानवता की रक्षा और गुलामी से मुक्ति के लिए संघर्ष कर रहे थे। उनके संघर्ष में पूरा बहुजन समाज इसलिए नहीं आ पाया क्योंकि, उस समय शाहूजी महाराज या उनके जैसा युगपुरुष नहीं था।

संसद भवन परिसर में लगी शाहूजी महाराज की प्रतिमा

रानी इंदुमती महाराजा शाहूजी की सच्ची उत्तराधिकारी

शाहूजी महाराज का जीवन कष्टों और दुखों से भरा था फिर भी उन्होंने हार नहीं मानी और अपना मार्ग नहीं बदला। कभी आततायी व्यवस्था का साथ नहीं दिया। महाराज के जीवनकाल में ही उनके युवा बेटे शिवाजी की शिकार के समय गम्भीर चोट आने से मृत्यु हो गई थी। उस समय उनकी आयु 23 साल थी और उनकी पत्नी महारानी इंदुमती की आयु मात्र 12 वर्ष थी। किसी भी व्यक्ति के जीवन में इस तरह की घटना उसे तोड़ने के लिए पर्याप्त होती है। लेकिन महाराज ने यह भी सहा। पुरोहितों ने बहुत डराया। राजमहल की सारी महिलाएँ, यहाँ तक कि उनकी महारानी भी उनके विरुद्ध होकर पुरोहितों के षड्यंत्र में शामिल हो गई थीं। बहुत ही गम्भीर समस्या खड़ी हो गई विधवा रानी इंदुमती के साथ। पूरा राजमहल महाराजा की पत्नी महारानी लक्ष्मीबाई के साथ परम्परागत व्यवस्था के अनुसार रानी इंदुमती को वैधव्य के सारे चिन्ह धारण करने और एक विधवा की भाँति जीवन जीने के लिए मजबूर करने पर अड़ा हुआ था। इन सारे विरोधों को झेलते हुए जवान बेटे की मृत्यु का दुख सहन करते हुए महाराज ने रानी इंदुमती की आधुनिक शिक्षा की योजना बनाई। उन्हें पढ़ाने के लिए पाँच शिक्षकों की नियुक्ति की गई। उनके साथ पढ़ने के लिए चार और समवय की लड़कियों को भी शिक्षा व्यवस्था में शामिल किया गया। लेकिन महल में पुरोहितों के षड्यंत्र और महारानी का उसमें शामिल होना एक ऐसा कष्ट था कि उससे निकल पाना मुश्किल था। आज के परिवेश में यह सोचने कि बात है कि जब वह महाराजा होकर वह अपनी बेटी जैसी पुत्रवधू को शिक्षा नहीं दिला पा रहे थे तो आम जनमानस की क्या स्थिति रही होगी। दिमागी गुलामी का आलम यह कि अपना परिवार भी साथ नहीं था। ऐसे में रानी इंदुमती की शिक्षा की व्यवस्था राजमहल से हटाकर सोनतली ले जाई गई। रानी इंदुमती रानी से हटकर आश्रम कन्या हो गई। चूँकि महल में पुरोहितों के षड्यंत्र लगातार चल ही रहे थे वह लगातार परम्परा, शास्त्रों और देवताओं का बहाना बनाकर महारानी को भड़का रहे थे। ऐसे में महारानी

लक्ष्मीबाई ने गलत आरोप लगाते हुए शाहूजी महाराज से अपने सम्बंध तोड़ लिए।

राजमहल की एक परम्परा थी कि महाराजा जब भी कोल्हापुर में होते थे, रानी और राज परिवार के सभी सदस्य महाराज के दर्शन के लिए आते थे। यह परम्परा महारानी ने विरोध स्वरूप समाप्त कर दिया कि जब महाराज राजकुल की परम्परा को तोड़कर विधवा रानी को शिक्षा देकर धर्म भ्रष्ट कर रहे हैं तो राजकुल की परम्पराओं का पालन क्यों किया जाए? महारानी के इस बर्ताव से शाहूजी महाराज के ऊपर क्या बीती होगी, इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

रानी इंदुमती को इन दुखों से मुक्ति दिलाने और व्यस्त रखने के लिए कि महाराज ने शिक्षा की आधुनिक व्यवस्था कराई। भार्गव कुलकर्णी, पुजारी मास्टर, जोगेलकर मास्टर, देवमास्टर और काडोलिकर मास्टर आदि पाँच शिक्षक थे, जिन्हें शिक्षा की जिम्मेदारी दी गई थी। रानी इंदुमती के साथ शिक्षा ग्रहण करने वाली अन्य चार महिलाएँ थीं राधाबाई कोलसे, सुंदराबाई सावंत, आंत्रिका बेकर और इंदिरा सबनीस। राजकुमारों को दी जाने वाली शिक्षा तथा घुड़सवारी, तीरंदाजी, शिकार खेलना आदि उनके पाठ्यक्रम में शामिल था। प्रतिदिन डेढ़ घंटे की नियमित घुड़सवारी का अभ्यास होता था। बापू साहब स्वयं अश्वारोहण की शिक्षा देते थे। महाराज की तरह रानी इंदुमती को भी शेर पालने का शौक था। राजा शाहूजी अपने कल्याणकारी कार्यों में रानी इंदुमती को भी शामिल करते थे और रानी पूरी लगन व रुचि के साथ जनकल्याणकारी कार्यों को सम्पादित करती थीं।

6 मई, 1922 को महाराज की अकाल मृत्यु से रानी इंदुमती की पढ़ाई में व्यवधान आया। दो बार उन्हें सोनतली आश्रम छोड़कर राजमहल जाना पड़ा। लेकिन महाराज राजाराम की सौम्यता भरी समझदारी से रानी की पढ़ाई चलती रही। शाहूजी महाराज की इच्छानुसार रानी इंदुमती ने मैट्रिक पास होने के बाद भी विद्याध्यान का कार्य करती रहीं। उनकी पढ़ने-लिखने में इतनी रुचि थी कि थोड़े ही समय में उनका एक ग्रंथालय तैयार हो गया। रानी इंदुमती को पार्श्व गायन बहुत पसंद था। वह बाल गंधर्व गायन की विधा में सिद्धहस्त थीं। उन्होंने इसका एक बड़ा संग्रह तैयार किया था। इस संग्रह का प्रकाशन भारत सरकार के द्वारा वर्ष 1965 में कराया गया था। शाहूजी महाराज के कदम चिन्हों पर चलते हुए रानी इंदुमती ने मई 1953 में कोल्हापुर में *अखिल भारतीय महिला परिषद* का सातवाँ अधिवेशन कराया था। इस अधिवेशन में महिलाओं के कल्याण के लिए महिला संस्थाओं की स्थापना पर जोर दिया गया और प्रतिनिधि महिला सभा की स्थापना करना तय किया गया। इसी क्रम में आगे चलकर उनके द्वारा 4 अप्रैल, 1954 में

ललित कला विहार की स्थापना की गई।

रानी इंदुमती की प्रेरणा और उत्साह के चलते महारानी विजय माला छत्रपति गृहणी महाविद्यालय की स्थापना वर्ष 1955 में कराई गई। यह रानी इंदुमती के प्रयासों का ही फल था कि महिलाओं के लिए पृथक परिणाम महाविद्यालय की स्थापना सम्भव हो सकी। रानी इंदुमती का पूरा जीवनकाल विद्या और शिक्षा के लिए समर्पित रहा। उनके सद्प्रयासों से ही 1961 में मॉडल हाईस्कूल फॉर गर्ल्स की स्थापना की गई। इस तरह से रानी इंदुमती शाहूजी महाराज की सच्ची उत्तराधिकारिणी थीं।

कानपुर में अखिल भारतीय कुर्मी समाज सम्मेलन में शाहूजी का आह्वान

यह समस्त पिछड़े वर्गों के लिए अत्यंत गौरव की बात है कि देश की दिशा और दशा में आमूल-चूल परिवर्तन लाने वाले दो सबसे बड़े नेता हमारे पिछड़े समाज से थे। हमारे देश में ब्राह्मण और क्षत्रिय समाज ने भले ही देश के अधिकतर संसाधनों पर कब्जा कर रखा हो, लेकिन आधुनिक भारत में मानवता की सेवा करने में इन दोनों महापुरुषों ने जो कार्य किया और जो योगदान किया है अभी तक पूरा देश मिलकर भी उनका कर्ज नहीं उतार सका है। शाहूजी महाराज ने राजा होते हुए भी अपना सम्पूर्ण जीवन कमजोर समाज के लिए समर्पित कर दिया। अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा, आधुनिक छात्रावास और समाज के कमजोर व शोषित वर्गों के लिए नित नए-नए कार्य करना उनको आनंदित करता था। विश्व के इतिहास में ऐसे राजा और शासक विरले ही होंगे, जिन्हें जन कल्याण में आनंद आता हो। सम्राट अशोक और तुर्की के कमाल पाशा जैसे कतिपय शासक ही इस श्रेणी में आते हैं। शाहूजी महाराज के जन्म से लगभग 45 वर्ष पहले वर्ष 1831 में एक साधारण माली परिवार में माता सावित्रीबाई फुले का जन्म होता है। शाहूजी महाराज तो राजा थे। यह हमारी किस्मत ही थी कि कोल्हापुर राजकुल की राजमाता आनंदीबाई ने यशवंतराव को अपने दत्तक पुत्र के रूप में चुना और देश की शोषित-पीड़ित जनता को उनका मसीहा मिला। यहाँ तो माता सावित्रीबाई का जन्म बिल्कुल हम जैसे साधारण परिवार में हुआ था। यह चिंतन का विषय है कि उस समय पुरोहित समाज की जकड़न कितनी मजबूत रही होगी। लेकिन समाज के सारे विरोधों को ध्वस्त करते हुए उन्होंने मात्र 18 वर्ष की उम्र में वर्ष 1848 में 18 विद्यालयों की स्थापना की। उन्हें देश की प्रथम शिक्षिका होने गौरव प्राप्त है।

शाहूजी महाराज पिछड़े वर्गों के कल्याण हेतु हमेशा तत्पर रहते थे। उत्तर भारत में कुर्मी समाज के नेताओं ने उन्हें अपने अधिवेशन में आमंत्रित किया तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई कि पिछड़ों में अब राजनैतिक चेतना आने लगी है। उनका

स्वास्थ्य उस समय ठीक नहीं था। लेकिन अस्वस्थ होते हुए भी अपनी सहमति दी और प्रसन्नता भी व्यक्ति की। 19 अप्रैल, 1919 में कानपुर में श्रीशिव प्रसाद और त्रिकोक चंद्र कटियार के आह्वान पर कुर्मी समाज की बड़ी परिषद की अध्यक्षता की। सभा की अध्यक्षता करते हुए अपने कालजयी भाषण में उन्होंने बहुत ही साफ शब्दों में जोर देकर कहा-

अपने परम्परागत व्यवसाय से चिपके मत रहो जहाँ और जब भी अवसर मिले खेती-बाड़ी के काम से हटकर अन्य व्यवसाय अपनाओ। जहाँ तक सम्भव हो बच्चों को शिक्षा से मत रोको। जितना भी सम्भव हो उन्हें सर्वोच्च शिक्षा दिलाओ। अपने कमजोर और बेसहारा भाइयों की मदद करो। अपना धन मंदिरों में बर्बाद मत करो, उन्होंने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि मैं भी आपकी ही तरह किसान हूँ। मेरे पूर्वज भी खेती करते थे। अपने संस्कार स्वयं करो अपने समाज में शिक्षा का प्रभाव बढ़ाओ, अपने संस्कार स्वयं करो। मैं कोल्हापुर में पुरोहित विद्यालय खोल रखे हूँ, आप भी पुरोहित विद्यालय खोलें। इसमें मेरे स्तर से पूरी सहायता उपलब्ध रहेगी। पर्दा खत्म करो, बेटियों को उच्च शिक्षा दिलाओ। अपने विवाह सम्बंध जाति तक ही सीमित न रखो। अपने बराबर की अन्य जातियों से वैवाहिक सम्बंध बढ़ाओ। मैंने इसीलिए विधवा पुनर्विवाह का कानून बनाया है। विधवाओं का पुनर्विवाह पूरी तरह कानूनी और वैध है।

शाहूजी महाराज का पूरा व्याख्यान ही समाज के उत्थान पर केंद्रित था। उन्होंने धार्मिक पाखंड और धर्मांधता के विरोध के द्वारा निरंतर नए ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रयास करते रहने का संकल्प लेने के लिए कुर्मी समाज का आह्वान किया। शाहूजी महाराज के इस भाषण का वहाँ उपस्थित लोगों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। उनके समक्ष एक ऐसा महाराजा उपस्थित था। जो उनके उत्थान की बात कर रहा था और बात ही नहीं वरन अपने शासन में किया भी था। अब तक जितने भी राजे-रजवाड़े आते थे उनकी बातें केवल उतनी ही होती थीं जितना पुरोहित उन्हें बोलने के लिए कहते थे। शाहूजी महाराज यहीं से उत्तर भारत के लोगों के दिलों में बस गए।

The right of the government on the land of the temples (the priests ran away)

Ruler of modern India. Who devoted his whole life to humanity. Such compassion for humanity and the weak and such concerted efforts for them is rare elsewhere. At least in Indian history there will be no other ruler except Emperor Ashoka except the British. Seeing the importance of spreading education for the welfare of the society, Shahuji Maharaj took many revolutionary steps. Our civilized society was not ready to accept this principle. To put it more simply, the priestly society still wanted to maintain its monopoly on education. Not only this, he did not tolerate any kind of interference in this monopoly. For this reason, the priests and the Brahmin community not only opposed their actions, but strongly opposed them at the grassroots level. To meet the shortage of teachers in this system, he appointed teachers by giving land and arranged free primary education for all the children. Donation of land in the form of salary was an old tradition of the country. But the problem was that the society which was as ahead in education was so cunning and insensitive that it was not ready to believe that everyone should be educated. He was not able to digest this education for everyone. This situation is more or less even today when we see that the liquor shops remained open continuously and the schools remained closed during the lock down. Very shamefully got information that the government is meeting the deficit? This experiment of Shahu ji Maharaj did not succeed. Those who were given land in lieu of education. instead of education for all. they implemented the principle of edu-

cation only for Brahmins. Bahujans were not even allowed to enter there. There too, the Bahujan population was kept away by making some excuse or the other. Gaining experience from this, he stopped the plan there. From this scheme, he got a lesson that a compulsory education law would have to be brought for the Bahujans to study. Till this law is not made, then this sly priestly society will not allow any other society to come to the school. In such a situation, he clased this scheme and started the scheme of compulsory and free primary education. And established primary schools in all the Villages with a population of 500 to one thousand, For this work, he made and arrangement of Rs. 1.00 lakh. To provide training to the teachers, trainer schools were established. To meet the shortage of teachers, such government employees who were bellow 25 years of age were compulsorily trained and engaged in teaching work.

This plan was progressing slowly. The paucity of funds was coming in the way for the establishment of schools. To fill this gap, Shahuji Maharaj took such a decision which is considered to be one of the most revolutionary decisions of the county. Shahuji Maharaj acquired all the temples of the state in one stroke and ordered the opening of primary schools in all the temple complexes. This solved the problem of shortage of buildings for schools. with his second order, he started using the income of the temples to pay salaries to the teachers. The priests of the temples were stunned by both these orders of the Maharaja. but they did not dare to protest in front of such a powerful ruler.

कुलकर्णी पद की समाप्ति

मराठी में तत्समय एक कहावत थी- 'कुलकर्णी तिचा आणि गावाला पीड़ा' अर्थात 'कुलकर्णी नामक प्राणी मनुष्यों को पीड़ा देने वाला है।' तत्कालीन ग्रामीण प्रशासनिक व्यवस्था में गाँव में दो अधिकारी होते थे। गाँव का मुख्य अधिकारी पटेल होता था और उसका सहायक या सचिव था कुलकर्णी। पटेल अधिकांशतः पढ़े-लिखे नहीं थे। वर्ण व्यवस्था के अनुसार उन्हें शिक्षा लेने की ज़रूरत भी नहीं थी। शिवाजी महाराज के सत्ता में आने के समय से ही यह व्यवस्था कायम थी। और कुलकर्णी पढ़े-लिखे थे। अतः प्रशासन का वास्तविक नियंत्रण कुलकर्णी के हाथ में था। वास्तव में कुलकर्णी का एकक्षत्र शासन था जिसके चलते वह लोगों से मनमाना 'कर' और 'महसूल' वसूलता था। इससे कुलकर्णी के विरुद्ध विद्रोह की चिंगारी सुलग रही थी। अतः बम्बई सरकार ने कई स्थानों पर कुलकर्णी को हटाकर तलाठी की नियुक्ति कर दी थी। लेकिन वहाँ भी वही समस्या थी, तलाठी की नियुक्ति भी कुलकर्णियों में से ही की गई थी। इससे केवल नाम बदला व्यवस्था वही चलती रही। ऐसा ही प्रयोग बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ ने भी किया था। लेकिन वह भी सफल नहीं रही। कुल मिलाकर जिन लोगों को कुलकर्णी पद से हटाया गया था। उन्हीं की तैनाती तलाठी पद पर हो रही थी। शाहूजी महाराज ने इस प्रकरण का सम्पूर्ण अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि अपने काम के अलावा ये लोग ब्याज पर पैसा उधार भी देते हैं। यही कारण है कि अधिकतर लोग न चाहते हुए भी इन्हीं का समर्थन करते हैं। अतः उन्होंने 13 जनवरी, 1918 को एक आदेश करके इनके बैंकिंग के काम पर एक साल का समय देते हुए प्रतिबंध लगा दिया। 6 फरवरी, 1918 को उन्होंने दूसरा आदेश कर कुलकर्णी को बलूटा (स्थानीय कर) देने पर प्रतिबंध लगा दिया और इसके एवज में कुलकर्णी को दी गई भूमि जिसे 'बलित' और 'खुता' कहते थे, को जब्त कर ग्राम समाज या सरकार के अधीन कर दिया। कुलकर्णी को राजस्व वसूल करने के अधिकार वापस लिए जाने के बाद कुलकर्णी पद स्वतः ही बेकार हो गया। राजस्व एकत्र करने के लिए नए पद 'तलाठी' की स्थापना की गई और यह

आदेश किया गया कि इनकी नियुक्ति परीक्षा के माध्यम से की जाए। लेकिन महारों का वतन जो उन्हें परम्परागत रूप से गाँव के चौकीदार होने के कारण वेतन के एवज में दिया जाता था को अबाधित रखा गया। उस समय वर्ण व्यवस्था अपने चरम पर होने के कारण किसी को भी अपने व्यवसाय को छोड़कर कोई अन्य धंधा करने पर रोक थी। महाराजा शाहूजी ने एक आदेश कर समस्त प्रजाजनों को उनके परम्परागत व्यवसाय को छोड़कर कोई भी व्यवसाय करने की अनुमति दी। (*विद्रोही छत्रपति शाहूजी महाराज,* पृष्ठ संख्या 286)।

शाहूजी महाराज का यह क्रांतिकारी निर्णय था। इस आदेश से यह भी पुष्ट होता है कि तत्समय वर्ण व्यवस्था कितनी शक्तिशाली थी कि अपने रोजगार छोड़ने और कोई अन्य रोजगार करने के लिए उन्हें आदेश करना पड़ा। यह कुलकर्णी और पटेल, गाँव के लोगों को अपने पुश्तैनी धंधे को करते रहने के लिए मजबूर करते थे और कोई अन्य व्यवसाय करने पर दंड देते थे। इस तरह का आदेश करके शाहूजी महाराज ने वर्ण व्यवस्था को अपने राज्य से बाहर कर दिया। भास्कर राव जाधव उनकी तलाठी योजना के प्रमुख थे। उन्होंने 3 अप्रैल, 1918 को महाराज को सूचित किया कि नई व्यवस्था में 200 तलाठियों की आवश्यकता होगी। इनके लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। सर्वप्रथम इस व्यवस्था को पाँच गाँवों में लागू किए जाने का निर्णय लिया गया। इनका विवरण इस तरह है-

क्रम	**गाँव का नाम**	**प्रभारी अधिकारी का नाम**
1.	ऊँचगाँव	राव बहादुर भास्कर, राव जाधव
2.	कलम्बे	राव बहादुर, खंडेराव, गायकवाड़
3.	रूकड़ी	राव बहादुर, कृष्णजी घोंडो मराठे
4.	चिखली	राव बहादुर, रामचंद्र रघुनाथ सबनीस
5.	बावड़ा	कारवीर, पीठ, शंकराचार्य

उस समय करवीर संस्थान की जनसंख्या इस प्रकार थी-

क्रम	**जाति**	**जनसंख्या**	**कुल जनसंख्या**
1.	ब्राह्मण	27453.00	4.02%
2.	मराठा	40,00,000,00	58.61%
3.	लिंगायत	72000,00	10.55%
4.	महार	70,000,000	10.55%

5.	जैन	38000,00	5.56%
6.	मुस्लिम	33000,00	4.63%
7.	धनगर	32000,00	4.67%
8.	चमार	10,000,00	1.46%
	गैर ब्राह्मण	**95.5%**	
	कुल जनसंख्या	**682453**	

जनसंख्या के हिसाब में चार प्रतिशत ब्राह्मण समाज के लोग राज्य के 90 प्रतिशत पदों पर काबिज थे। सारी समस्या की जड़ यही थी। कानून बनाकर और तरह-तरह के हथकंडे अपनाकर गैर ब्राह्मणों को पढ़ने न देना और फिर उसके बाद काबिलियत का ढोंग करना ही इन लोगों का सनातनी काम था और यही सनातन धर्म था। इसी व्यवस्था को तोड़कर शाहूजी महाराज ने जब कुलकर्णी पद समाप्त किया तो उनके विरोध का नया सिलसिला चल पड़ा कुलकर्णी लोगों ने अपना संगठन बनाया और अधिवेशन किया। दिनांक .... को आयोजित इस अधिवशन में शामिल सभी नेताओं ने शाहूजी महाराज के विरुद्ध जमकर विषवमन किया। इससे नाराज होकर समीप के गाँव तारदाल में लोगों ने कुलकर्णी परिवारों के यहाँ काम करने का बहिष्कार कर दिया। यह मात्र बहिष्कार ही था किंतु ब्राह्मण स्वामित्व के समाचार पत्रों *राज कारण, राष्ट्रहितवर्धिनी, राष्ट्रविलास* ने कुलकर्णी लोगों के सामाजिक बहिष्कार का इतना विकृत समाचार दिया कि 'तारडाल गाँव के लोगों के द्वारा आस-पास के ब्राह्मणों पर अत्याचार किए गए, उनकी जमीन, पशु आदि उपद्रवियों ने लूट ली, घरों में आग लगा दी, डर के मारे बहुत से ब्राह्मण गाँव छोड़कर सांगली भाग गए आदि।' इसके उलट जो ग्रामीण क्षेत्र के समाचार पत्र थे जैसे- *दीन मित्र, जागरूक, इंदु प्रकाश, ज्ञान सागर, दक्कन रैय्यत* ने लिखा कि न कहीं आग लगी, न कोई गाँव छोड़कर गया, न घर लूटे गए। केवल कुलकर्णी घरों में काम करने वालों ने काम पर न जाकर उनका बहिष्कार किया था। मात्र बहिष्कार से ही ये लोग बौखला उठे और ऐसे गम्भीर आरोप लगाने शुरू कर दिए।

इस नई व्यवस्था के विरोध में समूचा ब्राह्मण समाज आग उगलने लगा। विभिन्न पत्रों के माध्यम से मनगढ़ंत कहानियाँ रचकर शाहूजी महाराज और सरकार को भेजी गईं और बेसिर-पैर के आरोप लगाने शुरू कर दिए गए। इसका एक उदाहरण निम्नवत है-

कर्नल वुड हाउस

पॉलिटिकल
रेजिडेंट, करवीर राज
महाशय,

मैं करवीर राज्य का प्रजाजन हूँ और एक ब्राह्मण हूँ। बहुजन मराठों द्वारा ब्राह्मणों की भूमि पर कब्जा किया जाए, ब्राह्मणों का सामाजिक बहिष्कार किया जाए। इतना ही नहीं, ब्राह्मणों को सामाजिक गुनाहगार मानकर उनका सामाजिक बहिष्कार किया जाए, यह कहाँ का न्याय है? शाहूजी महाराज के द्वारा इस तरह के आदेश हर गाँव के दिए गए हैं। इन आदेशों का पालन न करने वालों पर सख्त सजा और जुर्माना का प्रावधान किया गया है, इस तरह सभी लोगों को डराया-धमकाया गया है। ऐसा आदेश दरबार के द्वारा और स्वयं राजा के द्वारा किया गया है।

ऐसी गम्भीर स्थिति होने के कारण सत्तासीन ब्रिटिश सरकार और उनके प्रतिनिधियों के द्वारा शीघ्रातिशीघ्र ब्राह्मणों के हित को ध्यान में रखकर हस्तक्षेप किया जाए और न्याय की रक्षा की जाए। खालसा क्षेत्र में ब्राह्मण कैसे निर्विघ्न रहते हैं लेकिन छोटे से करवीर राज्य में ब्राह्मणों का जीवन जल रहा है, फिर भी सर्वशक्तिमान सरकार केवल दिखावे की भूमिका क्यों करती है? इससे खालसा की प्रजा के मन में संदेह पैदा होता है।

आपका अत्यंत, आज्ञाधारक
नाम निशानी देने को डरने वाला अर्जीदार

लेकिन ब्रिटिश सरकार और कोल्हापुर के स्थानीय रेजिडेंट को वास्तविक स्थिति का पता हो गया था। अतः इन सबके विरोध का कहीं पर भी कोई असर नहीं पड़ा और कुलकर्णी व्यवस्था हमेशा के लिए समाप्त हो गई।

अस्पृश्यता पर प्रतिबंध और विशेष प्रयास

अछूतों की दशा, यह मात्र दशा ही नहीं हैं। आईना है हमारी सभ्यता का, कितने मानवीय हैं हम और कितनी संवेदना है हमारे लोगों में। जान-बूझकर, कानून बनाकर, इतनी बेदर्दी से सामूहिक कत्लेआम हुआ है मानवता का। वह भी ईश्वर के नाम पर। जिनके छू जाने से आदमी अपवित्र हो जाए जिसकी परछाई पड़ जाए तो वह सरेआम पीट दिया जाए। कानून में साफ-साफ लिख दिया गया था। क्या स्थिति होगी उसकी तसलीमा नसरीन को बांग्लादेश जाने से पहले यहाँ के हमारे धर्म ग्रंथों का अध्ययन कर लेना चाहिए था। उन्हें पता नहीं कितने अब्दुल यहीं मिल जाते हमारे पुरोहित समाज में! इतनी दयनीय स्थिति थी कि जिन कामों में इन्हें महारत हासिल थी उनके लिए भी इन्हें जगह कदापि नहीं मिलती थी। समाज में जो भी कुछ अच्छा था या हो सकता था वह सब इनके लिए निषिद्ध था। यहाँ तक कि हमारे विद्वान भी पूरी तरह से लूट-मार पर आधारित व्यवस्था के ही पोषक थे। शाहूजी महाराज ने सबसे पहले इन जातियों के लोगों में उनके मजबूत पक्ष का पता लगाया। यह लोग बहुत ही बलिष्ठ, शिकार करने में अत्यंत निपुण और स्वभाव में ईमानदार थे, अतः उन्होंने अपने व्यक्तिगत सेवक इसी समाज से रखे। इन लोगों को उन्होंने मल्ल युद्ध, कुश्ती और घुड़सवारी के लिए प्रेरित किया। पीढ़ी दर पीढ़ी शिकार का काम करते हुए ये लोग जन्मजात कुशल शिकारी होते थे। इनका निशाना अचूक होता था। शाहूजी महाराज ने अपने शिकार दस्ते में इन्हीं लोगों को रखा था और उनके अंदर सदियों से जो हीन भावना ठूँसी गई थी उसे निकालने के लिए उनके नाम के पीछे अच्छे और सम्मानजनक उपनाम जैसे सिंह, रायबहादुर, खान, पटेल, चौधरी, साहब आदि लगवाए।

समाज में इन लोगों को आगे बढ़ाने के लिए बहुत सारे छोटे स्तर के पदों पर महार समाज के लोगों की नियुक्ति की। इसी क्रम में इस समाज की स्थिति को उन्नत बनाने के लिए पुलिस विभाग में इनकी भर्ती के लिए शासनादेश जारी किया। 31 जुलाई, 1918 को यह आदेश दिया कि करवीर राज्य के 16 महारों को पुलिस विभाग में नियुक्त किया जाए और यदि किसी सेवक को आठ माह तक किसी

दूसरे गाँव में रुकना पड़े और दूरी 12 मील से ज्यादा हो तो उसे ढाई रुपये प्रति माह अतिरिक्त भत्ता दिया जाए। इसी अभियान के तहत उन्होंने क्लर्क पद पर महारों की भर्ती करना प्रारम्भ किया। इसी समय यह प्रसिद्ध कहानी आती है कि पहली बार जब उन्होंने शिक्षित महार युवक को क्लर्क पद पर भर्ती किया तो उसके काम में त्रुटियाँ निकाल कर ब्राह्मण अधिकारियों द्वारा उसका वेतन रोक दिया गया और बताया गया कि इसका काम सही नहीं है और यह लिपिक पद के लायक ही नहीं है। यह बात महाराज तक पहुँची। शाहूजी महाराज ने न्यायाधीश को यह कहकर लताड़ा कि आपकी इतनी लम्बी सेवा हो गई है। आप नए स्टाफ से ऐसे काम लेते हो? आप यही चाहते हो न कि आपकी जाति का कर्मचारी रखा जाए? आपने इसके प्रशिक्षण की क्या व्यवस्था कराई है? ब्राह्मण अधिकारी से कुछ कहते नहीं बना। उन्होंने कहा कि आप न्यायाधीश हो, मैं यदि आपसे कहूँ कि आप हाथी को सेना के लायक बनाओ और इसकी कोई ट्रेनिंग न दी जाए तो क्या आप यह काम कर पाएँगे? स्टाफ से काम लेने का ढंग भी होना चाहिए। सबसे पहले उसके प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए फिर काम का मूल्यांकन होना चाहिए। न्यायाधीश महोदय मुँह लटकाकर चले गए। इस घटना के बाद नए कर्मचारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई।

मात्र इतने पर ही शाहूजी महाराज नहीं रुके, उन्होने इस संवर्ग से मध्य वर्ग पैदा करने की नींव डाली। अस्पृश्य समाज से उन्होंने डाक्टर, अभियंता, वकील और अधिकारी बनाए। इस समाज के जिन होनहार विद्यार्थियों को वकालत की शिक्षा दिलाकर वकील बनाया उनके नाम निम्नवत हैं-

1. गणाचार्य (मातंग)
2. रामू करंडे (चमार)
3. मंडपालकर (महार)
4. डीसी पवार (चमार)

इन लोगों को वकालत की डिग्रियाँ देने के विरोध में पूरा पुरोहित समाज अपने पत्रों के माध्यम से उतर आया। लेकिन उन सबका जवाब शाहूजी महाराज ने दिया और यह सिद्ध कर दिया कि उन्हें भी अधिकार है और इन व्यवसायों ही नहीं समस्त व्यवसायों में समस्त जातियों का प्रतिनिधित्व होना चाहिए। अस्पृश्यों में से चिकित्सक पैदा करने के लिए मिरज मिशन हॉस्पिटल में डॉ. ब्हेल और डॉ. वानलेस जैसे विख्यात डॉक्टरों की देखरेख में कई विद्यार्थियों को चिकित्सा का कोर्स करने भेजा। इनका विवरण निम्नवत है-

1. खावड़े

2. चोपड़े

3. करवेकर

4. रमाकांत

शिक्षा पूरी होने के बाद डॉ. रमाकांत ने शिरोल गाँव में अपना दवाखाना भी खोला। अपने इसी मिशन में आगे बढ़ते हुए चमार जाति के अधिवक्ता डीसी पवार को कोल्हापुर नगर पालिका के अध्यक्ष पद पर पहुँचाया। अस्पृश्यों को सामाजिक बहिष्कार से मुक्ति मिले, इसलिए उन्होंने केशव पटेल (मराठा) से *मिश्र भोजन गृह* खुलवाया और आगे चलकर गंगा राम काम्बले (अछूत) से सत्यशोधक होटल खुलवाया। गणपत पवार और लक्ष्मण मास्टर नाम के दो अछूत युवाओं को सिलाई की दुकान खुलवाई और स्वयं अपने और राजमहल के वस्त्रों की सिलाई वहीं से कराने के आदेश दिया।

इन सबसे आगे बढ़कर उन्होंने अछूतों को सवर्ण बस्ती में घर उपलब्ध कराया। कुत्तेवान दशरथ साकटे मातंग को शाहूपुरी में घर दिलाया। उन्हें सवर्ण लोग सार्वजनिक नल से पानी नहीं लेने देते थे। अतः उनके घर के लिए अलग से नल की व्यवस्था कराई गई। गाँव की खुली जगह देखकर शाहूजी महाराज अस्पृश्यों को प्रोत्साहित करते थे कि 'अरे तुम लोग जलकर क्यों नहीं उठते? अपने महारवाड़े, माँगवाड़े जलाकर आओ, मैं तुम्हें गाँव में जगह दिलाऊँगा। इसी तारतम्य में राज्य से अस्पृश्यता समाप्त करने के कई आदेश निकाले गए। इनका विवरण निम्नवत है-

1. 1 अगस्त, 1918 को हाजिरी बंद करने का आदेश

2. 1 अगस्त, 1919 को आदेश कर राज्य में अस्पृश्यता समाप्त की गई। इस के लिए चार बार अलग-अलग आदेश निकाले गए जो अलग-अलग स्थानों के लिए थे, जैसे सार्वजनिक स्थानों के लिए अलग आदेश, चिकित्सालयों के लिए अलग आदेश, शिक्षण संस्थानों के लिए अलग आदेश। यह आदेश किया गया कि अस्पृश्यता का व्यवहार करने वाले को राजकीय सेवा से बाहर कर दिया जाए। ऐसे कर्मचारियों को पेंशन भी न दी जाए और ऐसी संस्थाएँ जो अस्पृश्यता से सम्बंधित शासनादेश न माने, उन्हें सारी राजकीय सहायता बंद कर दी जाए।

शाहूजी महाराज के इन आदेशों के होते समय पुरोहित वर्ग ने फिर चिल्लाना शुरू कर दिया कि राज्य में विद्रोह हो जाएगा, लोग सड़कों पर उतर आएँगे, अनिष्ट हो जाएगा। लेकिन शाहूजी महाराज एक-एक कर आदेश करते गए। कहीं से कोई विद्रोह, विरोध कुछ नहीं हुआ और सदियों से चली आ रही अमानवीय क्रूरता को उन्होंने अपने हाथों से कानून बनाकर उखाड़ फेंका।

दिल्ली दरबार में शाहूजी का सम्मान

यह बात सुनने में थोड़ी अजीब-सी लग सकती है कि इसमें कौन बड़ी बात है। अंग्रेज हमारे दुश्मन थे और उन्होंने एक देशी राजा का सम्मान किया। अंग्रेजों की हम जितनी भी बुराई क्यों न कर लें, हमें यह बात अच्छी तरह से समझनी होगी कि ब्राह्मणों की सबसे बड़ी व्यवस्था, जिसे हम वर्ण व्यवस्था के नाम से जानते हैं, में ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों को छोड़कर किसी को भी पढ़ने का अधिकार नहीं था। यह तो ब्रिटिश शासन का प्रभाव था कि शाहूजी महाराज समाज के कमजोर वर्गों को पढ़ने का अधिकार दिलाने में कुछ सफलता प्राप्त कर सके, जिसे बाबा साहब ने आगे बढ़ाया और वर्ण व्यवस्था की चक्की में सदियों से पिस रहे किसानों, दस्तकारों, मजदूरों को शिक्षा और जीने का अधिकार मिला। अंग्रेजों ने हिंदुओं की कई सामाजिक बुराइयों को कानून बनाकर समाप्त किया। इसमें सती प्रथा, कन्या शिशु हत्या, चरका प्रथा और शुद्धिकरण प्रमुख है। चूँकि अंग्रेजों ने वर्ण व्यवस्था पर हमला कर सभी को शिक्षा का अधिकार दिया। इससे ही क्रुद्ध होकर ब्राह्मण समाज जिसके हाथ में सम्पूर्ण सामाजिक राजनैतिक, नैतिक, मानसिक और धार्मिक सत्ता थी, का विरोध किया। इसकी झलक हम मंडल आयोग जैसे प्रकरणों में देख और समझ सकते हैं। समाज के कमजोर और सदियों से शोषित तबकों के उद्धार के बारे में उनके द्वारा किए गए संघर्षों के प्रतिफल में ही उन्हें विश्वविख्यात कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय ने एलएलडी की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से इस तरह का सम्मान पाने वाले वह एकमात्र भारतीय और वह भी भारतीय शासक हैं। इसी क्रम में शाहूजी महाराज के द्वारा किए गए समाजोत्थान के कार्यों के चलते उन्हें दिल्ली दरबार के द्वारा सम्मानित किया गया। सवाल यह है कि जब देश की सम्पूर्ण सत्ता अंग्रेजों में निहित थी तो वह अपने पिछलग्गू राजाओं का सम्मान क्यों करते? उन्हें इन मुर्दे राजाओं का सम्मान करने की क्या जरूरत थी वह तो बिना दाम के ही गुलाम थे। ऐसे में अंग्रेजों का किसी राजा का सम्मान करना अपने आप में बहुत बड़ी बात थी। विशेष रूप से पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए तो यह अत्यंत गौरव की

बात है कि हमारे महाराजा का लंदन और दिल्ली दरबार में ब्रिटिश शासन के द्वारा सम्मान किया गया।

पूना की पेशवा शाही का विनाश, कोल्हापुर की राजशाही से ब्राह्मणों का निर्मूलन, शाहूजी के द्वारा ब्राह्मणों की सत्ता को नष्ट कर देना, ज्योतिबा फुले के सत्यशोधक समाज का बढ़ता वर्चस्व ऐसे कारण थे जिनके चलते ब्रिटिश सरकार ने महाराजा को अलग से सम्मान देने का निर्णय लिया। 29 दिसम्बर, 1902 को दिल्ली दरबार के समारोह के प्रारम्भ में निकले जुलूस में मुम्बई राज्य की ओर से शाहूजी महाराज हाथी पर सवार होकर आगे चल रहे थे। यहाँ का मुख्य समारोह एक जनवरी, 1903 को सम्पन्न हुआ। तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड कर्जन के द्वारा आयोजित शाही दावत में *ड्यूक ऑफ कनॉट* ने शाहूजी महाराज को JCVO की उपाधि से सम्मानित किया। यह उपाधि पाने वाले वह एकमात्र राजा थे। शाहूजी महाराज को उन्होंने सामाजिक और शैक्षिक कार्यों के लिए सम्मानित किया था। यह अपने देश के इतिहास में एकमात्र उदाहरण हैं। चूँकि हमारे देश में आज भी शिक्षा, पत्रकारिता, न्याय व्यवस्था में केवल ब्राह्मणों का ही अनियंत्रित कब्जा है, इसीलिए देश के साहित्य में शिवाजी महाराज का नाम तो आता है, सरदार पटेल का नाम आता है लेकिन शाहूजी महाराज का नाम आते ही सवर्णों को साँप सूँघ जाता है। वह जानते हैं कि यह ऐसा नाम हैं जिस पर अगर देश का बहुसंख्यक समाज जाग गया तो सत्ता हमारे हाथ से निकलने में बहुत समय नहीं लगेगा। दिल्ली दरबार और लंदन में किसी शासक का सम्मान होना उस समय ऐसी घटना थी, जिसने शाहूजी महाराज को देश का सबसे सफल शासक सिद्ध कर दिया था।

परिवार और महल के लोगों के साथ शाहूजी महाराज

सोनतली आश्रम : शाहूजी का कैम्प

पंचगंगा नदी के किनारे पन्हालगढ़ के परिसर में सोनतली नाम का एक अत्यंत आकर्षक स्थान है। यह स्थान ही महाराज की छावनी थी। यह स्थान उन्हें इतना पसंद आया था कि उन्होंने इसे अपना कैम्प/ अस्थायी निवास बना लिया था। यहाँ ऊँचाई पर एक दो मंजिला का मकान था। बाद के समय में यही राजा शाहू की हवेली थी। हवेली के सामने एक छोटी-सी बगिया थी तथा दरवाजे पर झूलता गजराज। जंग बहादुर नाम था गजराज का। इससे आगे 30-40 फीट के अंतर पर 15 बाई 15 का भराव डालकर बनाया हुआ चबूतरा था। इसके उतार पर मोगरा, गुलाब, बेला, रजनीगंधा आदि के सुगंधित पौधे लगाए गए थे। भराव पर खम्भे खड़े किए गए थे। उस पर छप्पर डाला गया था। चारों दिशाओं से खुले इस भराव मंडप में 6/6 फीट का लकड़ी के फलकों से बनाया हुआ सादा पलंग रखा रहता था। इस पर एक लम्बी-चौड़ी गद्दी बिछाई गई थी। यही शाहूजी महाराज का शयन मंदिर था। इसके पश्चिम दिशा में एक छोटी इमारत थी। इसके सामने टेबल-बेंच आदि रखे हुए थे। यहीं महाराज के दर्शन होते थे। महारानी साहिबा युवराज, राजकुमार बंधु साहब, बापूसाहब आदि सारे लोग महाराज के दर्शन करने यहीं आते थे। यहीं था राजा का आश्रम। आश्रम के चारों ओर कम्पाउंड थे। कम्पाउंड के बाहर 18 कारखाने, दवाखाना, घोड़ों का तबेला, मोटर कारखाना, शिकारखाना, अखाड़ा, हाथी घर, साट्ठामारी बाजार लगाते थे।

सोनतली आश्रम की सुरक्षा में फाँसे पारधी लोगों को लगाया गया था। यहाँ रोज सुबह उठना, ठंडे पानी ने नहाना, शिवजी का पूजा करना, आदि से दिन की शुरुआत होती थी। महाराज ने वहाँ एक बड़ा स्नानघर बनवाया था। सुबह 5 या 5.30 पर महाराज स्नान के लिए पहुँचते थे। उन्हें नहलाने का काम एक बूढ़ा आदमी करता था, जिसका नाम रघु आबदार था। वह अपना काम बहुत ही निष्ठा से करता था। रघु आबदार, महाराज को बहुत सम्मान देता था। वह उन्हें देव नाम से पुकारता था। वह कई बार आवाज लगाकर उन्हें उठाता था- 'हे देवता! तू नींद से जागा है कि नहीं।'

आवाज से जागकर महाराज हौद के पास नहाने आ जाते। रघु आबदार उन्हें नहलाता था। स्नान-शौच का यह क्रम लगभग एक घंटा चलता था। रघु आबदार की तरह ही किशा खतकर उनका निजी सेवक था। किशा खतकर छाया की भाँति उनके साथ रहता था। वह कहीं भी बाहर जाते थे वह उनके साथ ही जाता था। चाहे सरकारी काम हो या प्राइवेट, किशा उनके साथ छाया की भाँति रहता था।

राजर्षि के खाने-पीने में कोई आडम्बर नहीं था। वह साधारण केले के पत्ते और इनेमल की कटोरी का उपयोग करते थे। सुगंधित चावल की जगह पर जाड़ा भरड़ा का मोटा चावल वह बड़े चाव से खाते थे। साथ में दही और नमक होता तो बहुत खुश होते थे। रोटी और मटन उनका प्रिय आहार था।

शराब को उन्होंने कभी छुआ तक नहीं। बीड़ी, सिगरेट, पाइप आदि व्यसनों से वह कोसों दूर थे। मान-सम्मान अदब का वह आदर्श थे। किसी के लिए भी उन्होंने अप्रिय भाषा का प्रयोग नहीं किया। उनके इन्हीं गुणों के कारण उन्हें राजा नहीं राजर्षि कहा जाता था।

शाहूजी महाराज राजा होने के साथ लोक नेता भी थे। अपने शासकीय कार्यों के अलावा बहुत से राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक आंदोलनों के वह सूत्रधार थे। ऐसे में उनके कार्यों का दायरा बहुत बड़ा था। लेकिन काम करने का उत्साह उससे कहीं अधिक था। प्रातःकाल से मध्य रात्रि तक वह काम में ही लगे रहते थे।

सुबह दस बजे घर के लोगों के साथ मिलकर वह अपने रथ से कोल्हापुर के लिए निकल पड़ते थे। सबसे पहले वह टाउन हॉल जाते थे। पिछले दिन के दिए हुए काम, टंकण आदि की जाँचकर कार्य निपटाते थे। इसमें प्रभावलकर उनकी सहायता करते थे। उसके बाद ही प्रधान सचिव सबनीस को जारी करने के लिए पत्र हस्तगत किए जाते थे। वहाँ से वह दो बजे दोपहर के भोजन अवकाश के लिए सोनतली जाते थे। इस समय ही वह कामकाज से सम्बंधित लोगों को रथ में बैठा लिया करते थे और रास्ते भर उनसे चर्चा करते थे। उनका रथ एक चलता-फिरता कार्यालय था। कभी-कभी न्यायालय से गणाचार्य वकील को साथ ले लिया करते थे। उनसे और बाबूराव जाधव से सत्यशोधकों के कार्य का जायजा लिया करते थे। साढ़े तीन बजे सोनतली में भोजन और विश्राम कर पुनः दिन का दूसरा सत्र कोल्हापुर भ्रमण से प्रारम्भ होता था। इसमें वह गंगाराम काम्बले की दुकान पर चाय पीने जाते और कारखानों का मुआयना करते। इस प्रकार कार्य सम्पादित करते हुए वह आठ बजे वापस सोनतली पहुँचते। भोजन के बाद बुटके उन्हें पत्र पढ़कर सुनाते थे। बुटके उनके रीडर थे और उन्हें जब भी समय मिलता

या जब भी वह कार्यालय में नहीं होते तो पत्रों को सुनकर और उसका जवाब बोलकर लिखवाते थे।

शाहूजी का परिवार बहुजनों का संगठन था। सभी धर्मों-पंथों के लोग उसमें शामिल थे। इसमें अमीर, गरीब, अस्पृश्य, ज्ञानी, ब्राह्मण, अनपढ़-गंवार, डॉ. ब्हेल, डॉ. वॉनलेस जैसे चिकित्सक, गायन सम्राट अल्लादिया खान, हस्त चित्रकार आबा लाल रहमान, रूस्तमे हिंद इमामबख़्श, बाबूराव पेंटर, भारतरत्न डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर, कर्मचारी भाऊ राव पाटील, प्रबोधनकार केसी ठाकरे, भास्कर राव जाधव, अन्ना साहब लट्‌ठे, महादेव गणेश डोंगरे, फांसे पारधी और भटके जमात के लोग शामिल थे।

महाराज को जानवर पालने का बहुत शौक था। वह ऐसा समय था जब शिकार खेलना राजाओं का प्रिय शौक होता था। उनकी पशुशाला में शेर से लेकर शिकारी कुत्ते तक शामिल थे। शेर पालना उनका प्रिय शगल था। वह स्वयं शेर पालते थे और अपने सबसे प्रिय सम्बंधियों को शेर पालने को देते थे। इसमें उनकी पुत्रवधू रानी इंदुमती और महारानी बावलीबाई को ही यह अधिकार प्राप्त था (महारानी लक्ष्मी बाई को यह अधिकार प्राप्त नहीं था।) शिकारी कुत्ते उनकी उनकी आवाज सुनते ही दौड़कर उनके पास आ जाते थे। जंग बहादुर उनका प्रिय हाथी था। पशुशाला में सभी जानवरों के पास जाना, उनसे बात करना उनको बहुत अच्छा लगता था। एक बार वह पशुशाला का निरीक्षण कर निकल गए और जंग बहादुर से बात नहीं की। बस हो गए जंग बहादुर नाराज। लगे चिंग्घाड़ने और पैर पटकने। यही नहीं, उसने पास पड़ी एक डाली अपनी सूँड़ से उठाकर महाराज की ओर फेंक दी। महावत ने चिल्लाकर महाराज को सावधान किया। वह सम्भलकर एक ओर हो गए। देखा कि जंग बहादुर उन्हें एकटक देखकर सूँड़ हिला रहा था। यह देखकर वह वापस आए। महावत ने मना किया कि जानवर गुस्से में है। लेकिन महाराज जैसे पास आए जंग बहादुर शांत हो गया। उससे हाल-चाल पूछा। जंग बहादुर खुश। उस पर हाथ रखकर बोले भाई नाराज मत होया करो। कई बार भूल जाता हूँ। माफ कर दो भाई। मैंने तुमसे बात नहीं की। महाराज में जैसी करुणा थी, वैसा ही बल भी था, उनके शरीर में। एक बार उन्होंने अपनी ताकत से एक शेर को गला दबाकर ही मार डाला था। उनके पालतू शेर खुले हुए उनके आस-पास ही टहलते रहते थे। एक सरदार जागीरदार उनसे हमेशा गलत ढंग से पेश आता था। इस पर वह कुछ बोलते नहीं थे। एक दिन वह किसी काम से निवास पर आ गया। उससे बात करते समय ही जान-बूझकर वह पगड़ी लेने अंदर चले गए। पास ही उनके पालतू शेर बैठे थे। उन पर निगाह

पड़ते ही सरदार डर के मारे पसीने से तर हो गया और थर-थर काँपने लगा। उसे डरा देखकर शेर और भी गुर्राने लगे। ऐसी दशा में सरदार साहब की हालत खराब और मदद के लिए उनसे आवाज भी नहीं निकल रही। इतने में महाराज पगड़ी बाँधते हुए वापस आ गए, 'अरे चुप हो जा अपने आदमी पर गुर्राते हैं क्या?' आवाज सुनकर शेर शांत हो गए। सरदार साहब ने वहीं हाथ जोड़ लिए। बिना कुछ कहे माफी माँगी और कहा अब मुझसे गलती नहीं होगी। मैं लोगों के बहकावे में आ गया था। ऐसे ही एक बहुत बदनाम घूसखोर अफसर के साथ हुआ। उसकी भी हालत खराब हो गई। वह डर के मारे बेहोश होने ही वाला था कि वह आ गए और बोले थोड़ी देर मेरे हट जाने पर यह हाल है, यदि मैं अपना हाथ तुम्हारे ऊपर से हटा लूँ तो क्या होगा? मेरे शेरों को झूठ बोलने वालों से बहुत चिढ़ है। यहाँ बहुत से लोग आते हैं, लेकिन ये झूठ बोलने वालों पर ही गुर्राते हैं। इस अफसर ने हाथ जोड़ लिए। 'आज मुझे बचा लो महाराज, अब मैं कभी झूठ नहीं बालूँगा। किसी से घूस नहीं लूँगा।'

महाराज की टीम में चीते भी थे। उन्होंने एक अफ्रीकन चीते को पालतू बनाया था। इस घटना का उल्लेख समाचार पत्र *टाइम्स ऑफ इंडिया* में हुआ था। यह कर्नल वुडहाउस के एक पत्र में भी मिलता है। यह पत्र 19 दिसम्बर, 1919 में लिखा गया था। (*राजर्षि शाहू राजा व माणूस,* पृष्ठ 486)।

शेर की पीठ पर बच्चों के साथ शाहूजी महाराज

अफ्रीका में अपने राज्य कोल्हापुर के लिए चीता खरीदने पहुंचे शाहूजी महाराज

डॉ. भीमराव अम्बेडकर के राजनैतिक गुरु और मार्गदर्शक

शिक्षावृत्ति और प्रतिभाओं की खोज के कार्यक्रम में बहुत विलम्ब से वर्ष 1920 के आस-पास शाहूजी महाराज को जानकारी प्राप्त हुई कि कोई महार छात्र विदेश से पीएचडी करके आया है। बस, वह चल दिए उस छात्र की खोज में और पहुँच गए मुम्बई की चाल में, अम्बेडकरजी के द्वार पर। बाबा साहब ने सुना तो भागते हुए आए और गिर पड़े महाराज के चरणों में बोले- 'आपने क्यों कष्ट किया महाराज! आदेश भेजते, मैं आता आपके पास। आपके पास मैं नहीं आ सका, मेरे अपराध को क्षमा करें महाराज। बहुत स्वागत है आपका। आपके आने से मेरी खोली पवित्र हो गई।' उनकी आँखों से आँसू गिरने लगे। 'आज तक मुझे बड़े लोगों ने केवल नफरत ही दी और आप इतने बड़े महाराजा मुझे ढूँढते हुए मेरे घर तक आ गए। क्षमा करें महाराज मैं आपके महल में नहीं आ सका। मुझे इसका दुख और शर्मिंदगी है। मेरे पास इतनी क्षमता नहीं है कि मैं आपका स्वागत कर सकूँ।' महाराज ने उन्हें गले से लगाया और बोले, 'मुझे गर्व है अम्बेडकर तुम्हारी विद्वता और क्षमता पर।' बड़े ही प्रेम से महाराजजी को चाय पिलाई और अपनी क्षमता के हिसाब से सम्मान किया। यह दो महापुरुषों का मिलन था। यहीं से शुरुआत होती है भारतीय इतिहास के उस स्वर्णिम युग की जिसने भारतीय इतिहास की दिशा बदलकर एक नए युग का पथ प्रदर्शित किया। भारतीय इतिहास को वर्ण व्यवस्था और *मनुस्मृति* से बाहर निकाल कर आधुनिकता के युग में प्रवेश कराया और स्वतंत्रता, समता और मानवता का वह द्वार खुला जिसकी शुरुआत अंग्रेजों ने की थी।

20 मार्च, 1920 को करवीर स्टेट के कागल जागीर के माणगाँव में अस्पृश्यों की पहली परिषद आयोजित की गई थी। महाराज इसके प्रमुख आयोजक थे। यह महाराज का अपना क्षेत्र था। अतः सारी व्यवस्था उन्हीं की थी। इस परिषद से ही बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर का व्यक्तित्व उभर कर सामने आया। डॉ. भीमराव अम्बेडकर को विशेष रूप से परिषद का अध्यक्ष बनाया गया था। इस

कार्यक्रम में बोलते हुए शाहूजी महाराज ने कहा, 'मैं अपने प्रिय मित्र डॉ. अम्बेडकर के विचारों का लाभ लेने यहाँ आया हूँ। अम्बेडकर अभी अपनी पढ़ाई कर रहे हैं और पढ़ाई करते हुए, *मूकनायक* नाम का पत्र निकालते हैं और सारे पिछड़े हुए समाज की बेहतरी के लिए काम करते हैं। इसीलिए मैं पूरे मनोयोग से उनका अभिनंदन करता हूँ, स्वागत करता हूँ। मैंने *हाजिरी* नामक घिनौनी प्रथा कानून बनाकर समाप्त कर दी है। बिना कोई गुनाह किए ही किसी को बाधित करना, निरुद्ध रखना मेरी ही नहीं हिज मैजेस्टी को भी स्वीकार्य नहीं है। बहुत छोटे से भूमि के टुकड़े, जिससे एक परिवार का भी पालन-पोषण नहीं हो सकता, की लालच में इनका जीवन बर्बाद हो रहा है।

'मैं डॉ. अम्बेडकर की विद्वता और समाज तथा देश के प्रति समर्पण की खुले दिल से प्रशंसा करता हूँ। हम उन्हें पंडित की उपाधि देते हैं और अपना नेता घोषित करते हैं। उन्हें बहुत से प्रलोभन दिए गए कि वह आपका साथ छोड़कर पुरोहितों से मिल जाएँ और पूरे ऐशो-आराम के साथ जीवन जिएँ। लेकिन मैं आभार मानता हूँ कि इतनी कमजोर स्थिति होने के बाद भी डॉ. अम्बेडकर हमारे साथ हैं। मैं अनुरोध करता हूँ कि डॉ. अम्बेडकर मेरे राजपूतवाड़ी सोनतली कैम्प पर मेरे साथ भोजन ग्रहण करने की कृपा करें।'

इस प्रकार पवित्र कोल्हापुर के माणगाँव परिषद में हजारों अस्पृश्यों के समक्ष डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्व की नींव रखी गई। शाहूजी महाराज की जय, अम्बेडकरजी की जय के घोष से माणगाँव का आकाश गूँज गया। यहीं से डॉ. अम्बेडकर के राजनैतिक जीवन की शुरुआत होती है। इस कार्यक्रम के बाद 30 मई, 1920 को नागपुर में *अखिल भारतीय बहिष्कृत परिषद* का आयोजन किया गया। नागपुर की इस परिषद में अपने अध्यक्षीय भाषण में शाहूजी महाराज ने कहा।

'अस्पृश्यता मानव समाज के लिए कलंक है। किसी को भी बिना कोई अपराध किए समाज से बहिष्कृत कर देना एक अपराधी और बेईमान समाज का द्योतक है। आप लोग उनसे अधिक बुद्धिमान, अधिक ताकतवर, अधिक त्यागी और देश सेवक हैं, जो आपसे अस्पृश्यता का व्यवहार करते हैं। आप देश के एक महत्वपूर्ण घटक हैं। मैं आपको बुद्धि पराक्रम में किसी प्रकार ब्राह्मण समाज से कम नहीं समझता। हम सब आपस में भाई हैं। हमारे हक, अधिकार, कर्तव्य बराबरी के हैं। इसी को आधार मानकर हमें काम करना है। मेरे घर-परिवार के लोगों को अपना निर्णय स्वयं लेने की स्वतंत्रता है। जिन्हें मेरी बात ठीक लगती है उन्हें मेरा पूरा समर्थन रहता है। जिन्हें अच्छी नहीं लगती उनका विरोध नहीं

होता, हम सब भारतीय हैं। भारतीय प्रजाजन किसी भी वर्ण जाति के हों, उससे राज्य कोई भेदभाव नहीं करेगा। व्यक्ति की दृष्टि में धर्म एक महत्वपूर्ण बात है लेकिन उससे राष्ट्र को कोई लेना-देना नहीं है। राष्ट्र की निगाह में सभी नागरिक बराबर हैं चाहे वह किसी भी जाति धर्म के हों।

स्वतंत्रता, समता, न्याय, बंधुता और बुद्धि प्रमाण्य या विज्ञान पर आधारित धर्म ही सच्चा धर्म है। अन्यथा धर्म के आधार पर सब ढोंग है। ऐसा आपके समाज के सबसे विद्वान नेता डॉ. भीमराव अम्बेडकर का कहना है। भीमराव अम्बेडकर आज की तारीख में देश के सबसे बड़े विद्वान हैं। यह हमारा सौभाग्य है कि हमें भीमराव जैसा नेता प्राप्त हुआ। हम सभी को उनका अनुसरण करना चाहिए।

इस परिषद की सबसे महत्वपूर्ण परिणति बाबासाहब के व्यक्तित्व के उभार के रूप में सामने आई। यहीं से वह देश के नेता और सबसे बड़े विद्वान के रूप में सामने कर आते हैं। नागपुर परिषद से पिछड़ों और अस्पृश्यों को यह स्पष्ट हो गया था कि संघ और शक्ति के बिना हमारे समाज का उद्धार नहीं हो सकता। इन दोनों परिषदों और शाहूजी महाराज के प्रबल और सशक्त समर्थन से दलितों और पिछड़ों को काफी आत्मसम्मान और आत्मबल प्राप्त हो गया था। इस सारी कवायद में शाहूजी महाराज की प्रेरणा कार्य कर रही थी। अब इस आंदोलन के नेता इस तरह का कोई अवसर ढूँढ रहे थे जिसमें ब्रिटिश सरकार के समक्ष अपनी बात रख सकें और अनुरोध कर सकें। अपने समाज के पशुवत सामाजिक जीवन के बारे में बता सकें। उन्हें बहुत समय इंतज़ार नहीं करना पड़ा। यह अवसर उन्हें 15 फरवरी, 1922 को तब प्राप्त हो गया जब ब्रिटिश युवराज दिल्ली आने वाले थे। ब्रिटिश युवराज का स्वागत सम्मान करने और अपनी बात उनके समक्ष रखने के उपरांत अगले दिन 16 फरवरी, 1922 को *अखिल भारतीय बहिष्कृत परिषद* का आयोजन किया गया था। इस आयोजन में अध्यक्षीय उद्‌बोधन करते हुए शाहूजी महाराज ने कहा-

'वास्तव में इस आयोजन में अध्यक्ष पद का अधिकार भीमराव अम्बेडकर का है। आपके ही रक्त से बने हुए यह आपके समाज के ही ऐसे आदमी हैं जो पूरी तरह आपके साथ हैं। यह मुझसे ज़्यादा या यूँ कहें आज की तारीख में सबसे अधिक पढ़े-लिखे आदमी हैं। इस समय वह अपनी शिक्षा पूरी करने के लिए विलायत गए हुए हैं। इसी कारण वह इस परिषद में शामिल नहीं हो सके हैं। वह जहाँ भी होंगे, इसी में लगे होंगे कि किस तरह अपने देश और भाइयों का कल्याण किया जा सके। आप इतनी विपन्न अवस्था में होते हुए भी देश के कोने से चलकर यहाँ आए हैं। आपने सम्राट जॉर्ज पंचम के युवराज का स्वागत-सम्मान किया है।

आपको इसके लिए धन्यवाद। उनके माध्यम से अपनी बात शीर्ष सत्ता तक पहुँचाने का जो मार्ग आपने अख्तियार किया है वह उत्तम है। इस सम्बंध में आपकी जितनी तारीफ की जाए वह कम है। आप सबमें स्वत्व की पहचान मुझे दिख रही हैं। इस नई अस्मिता जागृति के आधार पर लोगों ने संघर्ष कर आत्मविश्वास का जो बिगुल बजाया है उसे आगे बढ़ाते रहें और कितनी भी बाधाएँ आएँ आप लोग रुकना मत। तभी हम लोग अपने उद्देश्य में सफल होंगे और सामाजिक अधिकारों को पा सकेंगे। मेरा एक छोटा-सा राज्य है, लेकिन वहाँ पर सरकारी दफ्तरों में पिछड़ों और दलितों को 50 प्रतिशत पदों पर आरक्षण दिया गया है। आपको अवसर मिला तो आप ऊँचे से ऊँचे पद पर पहुँच सकते हैं। अभी अपने समाज को नया आकार प्राप्त हो रहा है। अभी हमारा समाज चलना सीख रहा है और केवल घुटनों के बल चलना ही सीख पाया है। हिंदू रीति के विपरीत सभी को समान अधिकार और मौका देना ब्रिटिश सरकार का सिद्धांत है। उसी के कारण आपको बोलने की आज़ादी मिली हुई है। भीमराव अम्बेडकर आपके महान नेता हैं, उनका अनुसरण करो, उनके जैसा बनाने का प्रयास करो। मैंने तो अपना जीवन मानवता को समर्पित कर दिया। आप भीमराव अम्बेडकर के बताए हुए मार्ग पर चलो, आपसे इतना ही अनुरोध है। (श्याम येडकर - *राजर्षि शाहू छत्रपति यांची भाषण* पृ. 79 - 81 *राजर्षि शाहू राजा व माणूस* पृ. 407 - 410)

शाहूजी महाराज, बाबासाहब से मित्रवत सम्बंध रखते थे। यद्यपि यह सत्य है कि बाबासाहब बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव गायकवाड की छात्रवृत्ति से शिक्षा अर्जित करने कई बार विदेश गए थे लेकिन महाराज गायकवाड की सहायता केवल शिक्षा सहायता तक ही सीमित थी। इससे आगे बढ़कर शाहूजी महाराज ने कई समारोहों में, कई मंचों पर खुलकर बाबासाहब को देश के भविष्य के रूप में सामने रखा था और आगे बढ़ाया था। जैसा कि उक्त तीनों घटनाओं, जहाँ से देश की राजनीति और विशेष रूप से पिछड़ों और अस्पृश्यों की राजनीति को जनमानस के सामने लाने की बात है। वहाँ देश के इतिहास में उक्त घटनाएँ वह आधार तैयार करती हैं जिस पर बाबासाहब आगे बढ़कर गाँधीजी की बराबरी कर गोलमेज कॉन्फ्रेंस में देश का प्रतिनिधित्व कर पाने के योग्य बना पाते हैं। शाहूजी महाराज बाबासाहब से 17 वर्ष बड़े थे। वह इंटरनेट का युग नहीं था। उस समय समाचार पत्र और टेलीफोन भी नहीं थे। महू के भीमराव अभी डॉ. अम्बेडकर नहीं बने थे और देश की मीडिया के चरित्र के बारे में जानकारी है ही। वह क्यों चाहती कि बाबासाहब की शाहूजी महाराज से मुलाकात हो? शाहूजी महाराज देश की प्रतिभाओं को खोजकर बाहर ला रहे थे और समाज में

योग्य नेतृत्व पैदा करने का कार्य कर रहे थे। बाबासाहब से मुलाकात के बाद उन्हें लग गया कि अब देश को सही नेतृत्व मिल गया है। अपनी इस बात को उन्होंने कई बार अपने भाषणों में कहा भी। यह देश का दुर्भाग्य था कि शाहूजी महाराज की मुलाकात बाबासाहब से बहुत देर से हुई। यदि इन दोनों महापुरुषों की मुलाकात कुछ वर्ष पहले हुई होती। शायद बाबासाहब को बड़ौदा राज्य में रहते हुए इतने दुःख न झेलने पड़ते। यह प्रश्न उठता है कि एक ओर शाहूजी महाराज देश की प्रतिभाओं को निखारने में लगे थे और उन्हें भीमराव की भनक बहुत देर से लगी। कारण स्पष्ट है, उस समय टेलीफोन नहीं था। संचार के लिए पत्र के नाम पर जो कुछ था वह पुरोहितों के हाथ में था और ये पुरोहित वही करते थे जो गाँधीजी ने पूना पैक्ट में किया था। अपनी जान पर खेलकर पिछड़ों का विरोध। ऐसी दशा में यह भली प्रकार जाना और समझा जा सकता है कि शाहूजी महाराज क्यों बाबासाहब तक नहीं पहुँच पाए?

यहाँ से लौटने के बाद महाराज बड़ौदा नरेश की पुत्री के विवाह में शामिल होने जाते हैं और वहाँ से वापस आने पर मुम्बई में ही 22 मई को उनका मात्र 48 वर्ष की आयु में देहांत हो जाता है। इतिहास गवाह है। पूना पैक्ट के समय दो वोटों और पृथक निर्वाचक मंडल का अधिकार छोड़ने के लिए कितना दबाव पड़ा था बाबासाहब के ऊपर। बाबासाहब उस समय अकेले पड़ गए थे। शाहूजी महाराज का व्यक्तित्व इस तरह का था कि वह गाँधीजी की प्रभावशीलता को इतना अधिक बढ़ने नहीं देते कि जो माँग वह पिछले 10 वर्षों से कर रहे थे और जिसके लिए उन्होंने अपना जीवन लगा दिया था उसे छोड़ने को अभिशप्त होना पड़े। यहाँ तक कि कांग्रेस के नेता विरोध में अपनी जान देने पर आ गए। यदि शाहूजी महाराज उस समय जीवित रहते तो कदाचित वर्तमान भांड प्रतिनिधित्व की व्यवस्था लागू नहीं हो पाती और समाज को उसके सच्चे प्रतिनिधि प्राप्त होते और आज यह दिन नहीं देखना पड़ता कि वर्ण व्यवस्था फिर से लागू हो गई जिसमें पहले तो अधिकार ही नहीं था पढ़ने का और अब बिना पढ़े 10 और 12वीं पास होकर वर्ण व्यवस्था को हमारे नेता ही सशक्त बना रहे हैं।

युवा पुत्र शिवाजी का देहांत

शाहूजी महाराज का सम्पूर्ण जीवन संघर्षों और कष्टों से भरा था। महाराज अदम्य साहस की प्रतिमूर्ति थे, पहाड़ जैसी कष्टकारी घटनाएँ भी उनके साहस को घटा नहीं पाईं और उन्हें किसी भी दशा में सन्मार्ग से हटा नहीं पाईं। एक ओर, बाल्यकाल में ही माता-पिता दोनों का देहांत और उससे भी अधिक अपने सामने ही 19 वर्षीय युवा बेटे का देहांत हो जाना। बड़े से बड़े हिम्मती व्यक्ति को तोड़ देने के लिए बहुत होती हैं। पुरोहितों का पूरा दल इसी काम में लगा हुआ था। पुरोहित ही नहीं, राजमहल की सारी महिलाएँ भी इसी काम में लगी हुई थीं। आज 100 साल के बाद हमारे समाज में मात्र एक घटना ही व्यक्ति को पुरोहितों की झोली में डाल देती है। उस समय की क्या स्थिति रही होगी जहाँ घर परिवार की महिलाएँ, पूरा का पूरा पुरोहित और अधिकारी संवर्ग अपनी व्यवस्था में खींचने के लिए पूरी ताकत लगा रहा था। उन्हें मजबूर कर रहा था कि वह ब्राह्मणवादी अस्पृश्यता के नक्शे-कदम पर चलें और समाज की भलाई के काम छोड़कर वर्ण व्यवस्था पर आधारित केवल ब्राह्मणों की भलाई के कार्य करें, क्योंकि ब्राह्मणों की भलाई में ही पूरे देश और समाज की भलाई है।

अर्थात हमारे अपने लोग यह कह रहे थे कि आप ऐशो-आराम करें। मजे से जीवन का आनंद लें, ब्राह्मण और हिंदू धर्म सत्ता के शीर्ष पर बैठकर अन्य राजाओं की भाँति आनंद लें? लेकिन महाराज मानो संघर्षों को झेलने और समाज की सेवा के लिए ही बने थे। इतनी सारी घटनाएँ राज परिवार की महिलाओं, माताओं, पुरोहितों आदि के विरोध को झेलते हुए अपने पथ पर बने रहे और मानवता की सेवा में उन्होंने कोई कमी नहीं आने दी, विभेदकारी वर्ण व्यवस्था को ध्वस्त किया और यहाँ तक कि बच्चों की शिक्षा में जब बाधा आई तो वह मंदिरों पर भी कब्जा करने से पीछे नहीं रहे। मंदिरों पर कब्जा कर वहाँ स्कूल खोलना एक ऐसा कार्य है, जिसके लिए उन्हें हमेशा याद किया जाता रहेगा। यहीं से मंदिरों के साथ प्राथमिक पाठशाला की नींव पड़ती है।

महाराज की तरह ही उनके बेटे शिवाजी को शिकार का बहुत शौक था।

जनवरी 1918 में वह परिवार और मित्रों के साथ शिकार के लिए कुम्भोज पहाड़ी के पास के क्षेत्र में गए हुए थे। इसी शिकार के दौरान ही उन्होंने जंगली सुअर को भागते देखा। शिवाजी तुरंत घोड़े पर सवार होकर सुअर के पीछे भागे और रेंज में आने पर उन्होंने भाला फेंका। भाला सुअर के आर-पार हो गया लेकिन उनका संतुलन बिगड़ गया और वह सिर के बल नीचे आ गिरे। कुछ ही मिनट पहले उनके घोड़े के पैर से नाल निकल कर छिटक कर बाहर आ गई थी। इसके कारण घोड़ा भी अनियंत्रित हो गया था। ऐसे में उनके गिरते ही दुर्भाग्यवश घोड़ा भी उनके ऊपर आ गिरा। उन्हें गम्भीर और अंदरूनी चोटें आईं। तत्काल उन्हें अस्पताल ले जाया गया, लेकिन चिकित्सक उन्हें बचा नहीं पाए और रात पौने नौ बजे उनका देहांत हो गया। महाराज उस समय मुम्बई में थे। जैसे ही महाराज को शिवाजी के बेहोश होने की खबर मिली वह तुरंत कोल्हापुर के लिए भागे। मिरज के अस्पताल पहुँचकर जब उन्होंने सभी अधिकारियों कि गर्दन झुकी हुई और चेहरे के होश उड़े देखे तो वह अपने को रोक नहीं पाए और फफक कर रो पड़े। इस घटना से उन्हें इतना आधात लगा कि उन्होंने वहाँ से सारे राजसी निशान त्याग दिए और सीधे पेड़ के नीचे सोने लगे। राजमहल तो वह पहले ही छोड़ चुके थे। सोनतली आश्रम में उन्होंने संन्यासियों की भाँति रहना शुरू कर दिया। जीवन में तीन इतनी बड़ी घटनाएँ होना मजबूत से भी मजबूत व्यक्ति को तोड़ने के लिए बहुत होती हैं। लेकिन शाहूजी महाराज पता नहीं किस मिट्टी के बने थे, या यूँ कहें कि महाराष्ट्र की पत्थरों युक्त चिकनी मिट्टी इतनी मजबूत थी कि उन्हें इतने दुख और दैवीय कष्ट भी तोड़ नहीं पाए और इन सबके साथ वह, घर-परिवार, पुरोहित और अधिकारियों के विरोध को झेलते हुए समाज और देश की सेवा में लगे रहे।

निर्वाण : एक युग की समाप्ति

अपने सम्पूर्ण जीवनकाल को मानवता की सेवा और समाज के सबसे कमजोर वर्ग के उत्थान के लिए पूरी तरह समर्पित कर देने वाले शाहूजी महाराज आधुनिक भारत की अनोखी प्रतिभा हैं। साथ ही वह देश की ब्राह्मणवादी सत्ता की नीचतापूर्ण, धूर्तता और उसके साथ संघर्ष के जीवंत प्रतीक हैं। देश पर सदियों से काबिज वर्ण व्यवस्था ने जिन महापुरुषों को स्वीकार नहीं किया, उनमें भगवान बुद्ध और शाहूजी महाराज राजकुल से आते हैं। राजा होकर भी अपनी प्रजा के बारे में इतनी चिंता करने वाला भगवान बुद्ध के अतिरिक्त और दूसरा कोई शासक भारतीय इतिहास में नहीं है। महाराज अपने सामाजिक क्रांति और विचारों से अछूत और पिछड़े समाज के उद्धारक के रूप में प्रसिद्ध हैं। माणगाँव परिषद से इस मशाल को उन्होंने बाबा साहब के हवाले कर दिया था। 15 अप्रैल, 1920 को नासिक में अछूतों के लिए छात्रावास का शिलान्यास करते समय हुई सभा में दिया गया भाषण इतना प्रभावशाली और लोकप्रिय था कि इसका तमिल, तेलुगु और अंग्रेजी में भी अनुवाद किया गया था। 25 और 26 जुलाई, 1920 को हुबली में आयोजित सामाजिक परिषद में उन्होंने ब्राह्मणों की जन्माधारित पुरोहितशाही समाप्त करने की घोषणा की। जनवरी 1920 को वह मद्रास गए। वहाँ गैर ब्राह्मण नेताओं के साथ बैठक की और उनकी आर्थिक मदद भी की। 13 और 14 फरवरी, 1922 को उन्होंने दिल्ली में आयोजित *अखिल भारतीय अछूत परिषद* को सम्बोधित करते हुए डॉ. अम्बेडकर को भविष्य के भारत का शिल्पी बताया था।

शाहूजी महाराज सामाजिक सम्बंधों के साथ-साथ पारिवारिक सम्बंधों का भी बहुत ध्यान रखते थे। वर्ष 30 अप्रैल, 1922 में बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव गायकवाड की पौत्री और महाराजा फते सिंह की बेटी की शादी से वापस आने के बाद उनके स्वास्थ्य में काफी गिरावट आ गई थी। वह काफी थकान महसूस करने लगे थे। दो दिन बड़ौदा में आराम करने के बाद वह 4 मई को मुम्बई पहुँचे। डाक्टरों ने वहाँ उनकी जाँच-पड़ताल की। इस समय डाक्टरों ने उनके स्वास्थ्य

में कोई विशेष समस्या नहीं पाई परंतु चिकित्सीय देखरेख के कारण वे वहीं मुम्बई के पन्हाला गेस्ट हाउस में ही रुक गए। उन्हें ऐसा लग रहा था कि अब बहुत काम हो गया। अब स्थायी रूप से विश्राम करने का समय आ गया है। उन्होंने अपने अंतिम समय अपने साथियो से कहा, 'साथियो! अब मुझे जाना है। किसी भी बात का मुझे अफसोस नहीं है। सभी को मेरा आखिरी सलाम कर देना, अलविदा। राजा कहीं प्रजा को सलाम करता है, वह भी बीसवीं सदी में। परंतु प्रजा को आखिरी सलाम करने वाले केवल शाहूजी राजा हैं, भारतीय इतिहास में! उन्होंने प्रजा और राजा में केवल मनुष्यत्व देखा। क्या अर्थ होता है मनुष्य का उसे जन जन तक उतारा। सदियों से ईश्वर के नाम से जन्मजात अभिशप्त जनता को यह बता कर दिखा कर कि तुम भी आदमी हो तुम्हें भी अधिकार है पढ़ने-लिखने और सिर उठाकर सम्मान सहित जीवन जीने का। मनुष्यत्व का अर्थ इन चार तथ्यों में समाहित है-

समता, स्वतंत्रता, बंधुता और न्याय

इन चार महासत्यों पर ही समाज और राष्ट्र का निर्माण होता है। इन चारों सत्यों की खोज में उन्हें बाबा साहब जैसा हीरा मिला तो माणगाँव परिषद में उन्होंने कहा कि मेरी चिंता खत्म हुई। भारत को नया भारत बनाने वाला मुझे मिल गया।

इस तरह मुम्बई के पन्हाला गेस्ट हाउस में 06 मई 1922 को सुबह दिन उगने से पहले मात्र 48 वर्ष की अल्पायु में ही हमारे देश के करोड़ों देशवासियों के सौभाग्य का सूर्य अस्त हो गया। महाराज के पार्थिव शरीर को पूना-सतारा मार्ग से कोल्हापुर ले जाया गया। जगह-जगह हजारों-लाखों की संख्या में लोग हाथ बाँधे खड़े थे। अपने उद्धारक राजा की अंतिम झलक पाने के लिए। लोग फूट-फूटकर रो रहे थे कि महाराज ने बहुत जल्दी हमें असहाय कर दिया। पूरे राजकीय सम्मान से महाराज का अंतिम संस्कार सपन्न हुआ। उनकी इच्छा के अनुसार ब्राह्मण पुरोहितों को इस कार्यक्रम में नहीं बुलाया गया था। उनके अंतिम संस्कार के समय उनके पुत्र राजाराम और विधवा रानी लक्ष्मी बाई ने कहा था 'परिणाम कुछ भी हो हमें उसकी परवाह नहीं हम महाराज के विचारों के प्रति हमेशा वफादार रहेंगे और महाराज की इच्छानुसार उनके कार्यों को आगे बढ़ाते रहेंगे।'

डॉ. भीमराव अम्बेडकर और शाहूजी महाराज

ब्रिटिश सरकार के अफसरों के साथ शाहूजी महाराज